CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

16.1

भगवानश्री कुन्दकुन्द-कहान जैन शास्त्रमाला

पुष्प : १९

मूल में भूल

२८५६

भैया भगवतीदासजी और विद्वद्वर्य पंडित
श्री बनारसीदासजी कृत दोहापर
परम पूज्य श्री कानजी स्वामी के प्रवचन

.·. अनुवादक .·.
पंडित परमेष्ठीदास जैन न्यायतीर्थ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्ग संख्या डि १५० ८ प्राप्ति-संख्या २०५८

ग्रन्थ-कार्ड

श्री गणेश वर्णी दि० जैन (शोध) संस्थान

ग्रन्थागार

नरिया, वाराणसी-५

ग्रन्थ नाम मूलमें भूल

लेखक भगवतीदास जी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवानश्री कुंदकुंद-कहान जैन शास्त्रमाला

पुष्प : १९

२६९४ √
हि. १५०८

मूल में भूल

भैया भगवतीदासजी और विद्वद्वर्य पंडित
श्री बनारसीदासजी कृत दोहापर
परम पूज्य श्री कानजी स्वामी के प्रवचन

श्री गणेश वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान
नरिया, (का. हि. वि. (व.) वाराणसी-५

: अनुवादक :

पंडित परमेष्ठीदास जैन न्याय...

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्व हक श्री जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के स्वाधीन हैं

卐 卐
卐
卐 卐

प्रथम संस्करण ५००० वैशाख २४७२
दूसरा संस्करण २००० अश्वीन, वीर, सं. २४७९
मूल्य : ०-१२-०
[डाक खर्च अलग]

ॐ ॐ
ॐ
ॐ ॐ

: प्राप्ति स्थान :
श्री जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़-(सौराष्ट्र)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हि. १९२० २०५२८

मूल में भूल

[प्रथम विभाग]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भैया भगवतीदासजी कृत

उपादान-निमित्त-संवाद

दोहा-४७

पाद प्रणमि जिनदेव के एक उक्ति उपजाय।
उपादान अरु निमित्त को, कहूं संवाद बनाय ॥ १

पूछत है कोऊ तहां उपादान किह नाम;
कहो निमित्त कहिये कहा कब कै है इहठाम ॥ २

उपादान निज शक्ति है जियको मूल स्वभाव।
है निमित्त परयोग तें बन्यो अनादि बनाव ॥ ३

निमित्त कहे मोकों सबै, जानत है जगलोय;
तेरे नाव न जान ही, उपादान को होय ॥ ४

उपादान कहैं रे निमित्त, तू कहा करै गुमान
मोकों जानें जीव वे जो हैं सम्यक्वान ॥ ५

कहैं जीव सब जगत के, जो निमित्त सोई होय।
उपादान की बात को, पूछे नाहीं कोय ॥ ६

उपादान बिन निमित्त तू कर न सके इक काज।
कहा भयौ जग ना लखे जानत है जिनराज ॥ ७

देव जिनेश्वर गुरु यती अरु जिन आगमसार।
इह निमित्तसें जीव सब पावत है भवपार ॥ ८

यह निमित्त इह जीव के मिल्यो अनंतीवार।
उपादान पलटयो नहीं तो भटक्यो संसार ॥ ९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के केवलि के साधु के निकट भव्य जो होय।
सो क्षायक सम्यक् लहै यह निमित्त बल जोय॥ १०

केवलि अरु मुनिराज के पास रहे बहु लोय।
पै जाको सुलटयो धनी क्षायिक ताको होय॥ ११

हिंसादिक पापन किये जीव नर्क में जाहि।
जो निमित्त नहि कामको तो इम काहे कहाहिं॥ १२

हिंसा में उपयोग जहां, रहे ब्रह्म के राच।
तेई नर्क में जात हैं, मुनि नहिं जाहि कदाच॥ १३

दया दान पूजा किये जीव सुखी जग होय।
जो निमित्त झूठौ कहो यह क्यों माने लोय॥ १४

दया दान पूजा भली जगत माहि सुख कार।
जहं अनुभव को आचरण तहं यह बंधविचार॥ १५

यह तो बात प्रसिद्ध है सोच देख उर मांहि।
नरदेही के निमित्त विन जिय त्यों मुक्ति न जाहिं॥ १६

देह पींजरा जीव को रोकै शिवपुर जात।
उपादान की शक्ति सों मुक्ति होत रे भ्रात॥ १७

उपादान सब जीव पै रोकन हारौ कौन।
जाते क्यों नहि मुक्ति में विन निमित्त के हौंन॥ १८

उपादान सु अनादिको उलट रह्यौ जगमाहिं;
सुलटत ही सूधे चलें सिद्धलोक को जांहि॥ १९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहुं अनादि विन निमित्त ही उलट रह्यौ उपयोग;
असी बात न संभवै उपादान तुम जोग ॥ २०

उपादान कहे रे निमित्त हम पै कही न जाय ।
असे ही जिन केवली देखे त्रिभुवन राय ॥ २१

जो देख्सो भगवान ने सो ही सांचो आहिं ।
हम तुम संग अनादि के बली कहोगे कांहिं ॥ २२

उपादान कहै वह बली जाको नाश न होय ।
जो उपजत विनशत रहे बली कहां ते सोय ॥ २३

उपादान तुम जोर हो तो क्यों लेत अहार;
पर निमित्त के योग सों जीवत सब संसार ॥ २४

जो अहार के जोग सों जीवत है जगमांहि ।
तो वासी संसार के मरते कोऊ नांहि ॥ २५

सूर सोम मणि अग्नि के निमित्त लखें ये नैन ।
अंधकार में कित गयो उपादान दृग दैन ॥ २६

सूर सोम मणि अग्नि जो, करे अनेक प्रकाश ।
नैन शक्ति बिन ना लखैं अंधकार सम भास ॥ २७

कहै निमित्त वे जीव को मो बिन जगके माहिं,
सबै हमारे वश परे हम बिन मुक्ति न जाहिं ॥ २८

उपादान कहै रे निमित्त! असे बोल न बोल,
तोको तज निज भजत हैं ते ही करें किलोल ॥ २९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहै निमित्त हमको तजैं ते कैसे शिव जात,
पंच महाव्रत प्रगट है और हु क्रिया विख्यात ॥ ३०

पंच महाव्रत जोग त्रय और सकल व्यवहार,
पर कौ निमित्त खपाय के तब पहुंचे भवपार ॥ ३१

कहै निमित्त जगमैं वड्यौ मोतें वडौ न कोय,
तीनलोक के नाथ सब मो प्रसाद तें होय ॥ ३२

उपादान कहै तू कहा चहुंगति में ले जाय;
तो प्रसाद तें जीव सब दुःखी होहिं रे भाय ॥ ३३

कहै निमित्त जो दुःख सहै सो तुम हमहि लगाय,
सुखी कौन तैं होत है ताको देहु बताय ॥ ३४

जो सुख को तूं सुख कहै सो सुख तो सुख नांहि,
ये सुख दुःख के मूल है, सुख अविनाशी मांहि ॥ ३५

अविनाशी घट घट वसे सुख क्यों विलसत नांहि;
शुभ निमित्त के योग बिन परे परे बिललाहिं ॥ ३६

शुभ निमित्त इह जीवको मिल्यो कंइ भवसार ।
पै इक सम्यक्दर्श बिन भटकत फिर्यो गंवार ॥ ३७

सम्यक्दर्श भये कहा त्वरित मुक्ति मे जाहिं ?
आगे ध्यान निमित्त है ते शिव को पहुंचाहिं ॥ ३८

छोर ध्यान की धारणा मोर योग की रीत ।
तोरि कर्म के जालको जोर लई शिव प्रीत ॥ ३९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तब निमित्त हार्यो तहां अब नहिं जोर बसाय ।
उपादान शिव लोक में पहुंच्यौ कर्म खपाय ॥ ४०

उपादान जीत्यो तहां निजबल कर परकाश ।
सुख अनंत ध्रुव भोगवे अंत न वरन्यो तास ॥ ४१

उपादान अरु निमित्त ये सब जीवन पै वीर ।
जो निजशक्ति संभार ही सो पहुंचे भव तीर ॥ ४२

भैया महिमा ब्रह्म की कैसे वरनी जाय ?
वचन अगोचर वस्तु है कहिवो वचन बताय ॥ ४३

उपादान अरु निमित्त को सरस बन्यो संवाद ।
समदृष्टि को सरल है मूरख को बकवाद ॥ ४४

जो जानै गुण ब्रह्म के सो जानै यह भेद ।
साख जिनागम सो मिलै तो मत कीज्यो खेद ॥ ४५

नगर आगरा अग्र है जैनी जन को वास,
तिह थानक रचना करी 'भैया' स्वमतिप्रकाश ॥ ४६

संवत् विक्रम भूप को सत्तरहसैं पंचास ।
फाल्गुन पहले पक्ष में दशों दिशा परकाश ॥ ४७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

भैया भगवतीदासजी कृत

उपादान–निमित्त संवाद

पर किये गये

परम पूज्य श्री कानजी महाराज के प्रवचन

यह उपादान निमित्त का संवाद है, अनादि काल से उपादान निमित्त का झगडा चला आरहा है। उपादान कहता है कि दर्शनज्ञानचारित्रादि गुणोंकी सावधानी से आत्मा का कल्याण रूपी कार्य होता है। निमित्त कहता है कि शरीरादिकी क्रिया करने से अथवा देव, गुरु शास्त्र से और शुभभाव से आत्मा का कल्याण होता है। इस प्रकार स्वयं अपनी बात सिद्ध करने के लिये उपादान और निमित्त दोनों युक्तियां उपस्थित करते हैं और इस झगडे का समाधान यहां पर वीतराग शासनमें सच्चे ज्ञान के द्वारा होता है।

अनादिकाल से जगत् के अज्ञानी जीवोंकी दृष्टि पर के ऊपर है इसलिये 'मेरे आत्माका कल्याण करने की मुझमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शक्ति नहीं है, मैं अपंग-शक्तिहीन हूं, कोई देव, गुरु, शास्त्र इत्यादि पर मुझे समझादे तो मेरा कल्याण हो' इस प्रकार अनादिकाल से अपने आत्मा के कल्याणको पराश्रित मानता है। ज्ञानीकी दृष्टि अपनी आत्मा पर है इसलिये यह मानता है कि आत्मा स्वयं पुरुषार्थ करेगा तो मुक्ति होगी अपने पुरुषार्थ के अतिरिक्त किसी के आशीर्वाद इत्यादि से कल्याण होगा, यह मानना सो अज्ञान है। इस प्रकार उपादान कहता है कि आत्मा से ही कल्याण होता है और निमित्त कहता है कि परवस्तु का साथ हो तो आत्मकल्याण हो, इसमें निमित्त की बात बिल्कुल झूठ अज्ञान से परिपूर्ण है, यही बात इस संवाद में सिद्ध की गई है।

उपादान–अर्थात् वस्तुकी सहज शक्ति और आत्मा पर से भिन्न है, देहादिक किसी परवस्तु से आत्मा का कल्याण नहीं होता इस प्रकार श्रद्धा ज्ञान करना सो उपादान कारण है।

निमित्त–अर्थात् अनुकूल संयोगी अन्य वस्तु. जब आत्मा सच्ची श्रद्धा-ज्ञान करता है तब जो सच्चे देव, शास्त्र, गुरु उपस्थित हों उन्हें निमित्त कहा जाता है।

देव, गुरु, शास्त्र मुझ से भिन्न हैं और पुण्य पाप के भ व भी मैं नहीं हूं, मैं ज्ञानादि अनंतगुण का पिंड हूं इस प्रकार जीव अपनी शक्तिको संभाल करता है सो उपादान कारण है और अपनी शक्ति उपादान है। यहां पर उपादान और उपादान कारण का भेद बताया गया है। उपादान त्रिकाली द्रव्य है और उपादान कारण पर्याय है। जो जीवउपादान शक्ति को संभाल कर उपादान कारण को करता है उसके मुक्तिरूपी कार्य अवश्य प्रगट होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे ४२ वें दोहेमें इस संबंध में कहा गया है कि 'उपादान और निमित्त तो सभी जीवों के होता है किंतु जो वीर है वह निजशक्ति को संभाल लेता है और भवसागर को पार करता है' यहांपर निजशक्ति की संभाल करना सो उपादान कारण है और वही मुक्ति का कारण है। आत्मा में शक्ति तो बहुत कुछ है किंतु जब स्वयं उस शक्ति की संभाल करे तब श्रद्धा-ज्ञान-स्थिरता रूप मुक्ति का उपाय हो; किंतु अपनी शक्ति की संभाल किये बिना मुक्ति का उपाय नहीं हो सकता। यही बताने के लिये इस संवाद में उपादान और निमित्त की एक दूसरे के विरूद्ध युक्तियां दी गई हैं और इस संबंधमें भी सर्वज्ञ भगवान का अंतिम निर्णय दिया गया है, जिससे उपरोक्त कथन सिद्ध होता है।

आत्माका उपादान स्वभाव मन, वाणी, देह रहित है, उसे किसी परवस्तु की सहायता नहीं है ऐसी सहजशक्ति का जो भान करता है वह उपादान स्वभाव को जानता है। उपादान स्वभावको जाना सो उपादान कारण हुआ और उस समय उपस्थित देव, शास्त्र, गुरु इत्यादि को निमित्त कहलाता है। उपादान निमित्त की यह बात बडी अच्छी और समझने योग्य है। शास्त्राधार से अपूर्व कथन किया गया है उसमें पहले मांगलिक रूपमें निम्न लिखित दोहा कहा गया है:--

(दोहा)

पाद प्रणमि जिनदेव के एक उक्ति उपजाय।
उपादान अरु निमित्त को, कहूं संवाद बनाय ॥ १ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ:--जिनेन्द्रदेव के चरणों में प्रणाम करके एक अपूर्व कथन तैयार करता हूं—उपादान और निमित्त का संवाद बना कर उसे कहता हूं।

इस बात को समझने के लिये यदि जीव गहरा उतर कर विचार करे तो उसका रहस्य ज्ञान हो। जैसे आध मन दही की छाछ में से मक्खन निकालने के लिये यदि ऊपर ही ऊपर हाथ फेरा जाय तो मक्खन नहीं निकलता किंतु छाछ को विलोकर भीतर नीचे तक हाथ डालकर मथे तब मक्खन ऊपर आता है किंतु यदि सर्दी के दिनोंमें ठंडी के कारण आलस्य करके छाछ के भीतर हाथ न डाले तो छाछ में से मक्खन नहीं निकलेगा, इसी प्रकार जैनशासन में जैन परमात्मा सर्वज्ञ देव के द्वारा कहे गये तत्त्वों में से यदि गहरी तर्कबुद्धि के द्वारा गहरा विचार करके मक्खन निकाले तो मुक्ति हो। उपरोक्त दोहामें 'उक्ति' शब्द का प्रयोग किया है उसका इसप्रकार अर्थ किया है।

जिनदेव सर्वज्ञ वीतराग भगवान के चरणकमल में प्रणाम करके अर्थात् विशेष प्रकार से नमस्कार करके मैं एक युक्ति बनाता हूं। अर्थात् तर्क का दोहन करता हूं। इस संवाद में युक्ति पुरस्सर बात कही गई है, इसलिये समझने वाले को भी तर्क और युक्ति के द्वारा समझने का परिश्रम करना होगा। यों हो ऊपर ही ऊपर से सुन लेने से समझ में नहीं आयगा। जैसें छाछ को विलोने से मक्खन निकलता है उसी प्रकार स्वयं ज्ञानमें विचार करके समझे तो यथार्थ तत्त्व प्राप्त हो। जैसे घर का आदमी चाहे जितनी अच्छी नरम रोटी बनावे किंतु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह कहीं खा नहीं देता वह तो उसे स्वयं खाना होता है, इसीप्रकार श्री सद्गुरुदेव चाहे जैसी सरलभाषा में कहें किन्तु भाव तो स्वयं ही समझना होगा। तत्त्व को समझने के लिये अपने में विचार करना चाहिये। जिन्हें केवलज्ञान ओर केवल दर्शन रूपी आत्म लक्ष्मी प्रगट हुई है ऐसे श्री सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा को नमस्कार करके उनकी कही गई बात को न्याय की संधि से मैं (भैया भगवतीदास) युक्ति पूर्वक उपादान निमित्त के संवाद के रूप में कहता हूं ॥१॥

—प्रश्न—

पूछत है कोऊ तहां उपादान किह नाम;
कहो निमित्त कहिये कहा कब कै है इहठाम ॥२॥

अर्थः—यहां कोई पूछता है कि उपादान किसका नाम है, निमित्त किसे कहते है और उनका संबंध कब से है सो कहो ?

उपादान का अर्थ क्या है यह बहुत से लोग नहीं जानते। हिसाब की बहीयों में भी उपादान का नाम नहि आता है। दया इत्यादि करने से धर्म होता है यह तो बहुत से लोग सुनते और मानते हैं, किंतु यह उपादान क्या है और निमित्त क्या है, इसका स्वरूप नहीं जानते; इसलिये उपादान और निमित्त का स्वरूप इस संवाद में बताया गया है।

दही के होने में दूध उपादान और छाछ निमित्त है। दही दूधमें से होता है छाछमें से नहीं होता। यदि छाछमें से दही होता हो तो पानी में छाछ डालने से भी दही होजाना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चाहिये, किन्तु ऐसा नहीं होता। इसी प्रकार शिष्य के आत्मा की पर्याय बदलकर मोक्ष होता है। कहीं गुरुकी आत्मा बदलकर शिष्यकी मोक्षदशा के रुपमें नहीं हुआ जाता। शिष्य का आत्मा अपना उपादान है, वह स्वयं समझकर मुक्त होता है किंतु गुरु के आत्मा में शिष्यकी कोई अवस्था नही होति।

उपादान='उप+आदान' उप का अर्थ है समीप और आदान का अर्थ है ग्रहण होना। जिस पदार्थ के समीप में से कार्य वा ग्रहण हो वह उपादान है और उस समय जो परपदार्थ की अनुकूल उपस्थिति हो सो निमित्त है ॥२॥

अव शिष्य प्रश्न पूंछता है कि—(कोई विरला जीव ही तत्त्व के प्रश्नों को पूछने के लिये खडा रहता है, जिसे प्यास लगी होती है वही पानी की प्याउ के पास जाकर खडा होता है, इसी प्रकार जिसे आत्मस्वरुप को समझने को प्यास लगी है और उस ओर की जिसे आंतरिक अकांक्षा है वही जीव सत्समागम से पूछता है) हे प्रभु! आप उपादान किसे कहते हैं और निमित्त किसे कहते हैं और वे उपादान तथा निमित्त एक स्थानपर कब से एकत्रित हुये हैं? दोनों का संयोग कब से है?

ऐसे जिज्ञासु शिष्य के प्रश्न का उत्तर देते हुये कहते हैं कि:—

उपादान निज शक्ति है जियको मूल स्वभाव।
है निमित्त परयोग तें बन्यो अनादि बनाव ॥३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थः—उपादान अपनी निज की शक्ति है वह जीव का मूल स्वभाव है और पर संयोग निमित्त है. उनका संबंध अनादिकाल से बना हुआ है।

यहां पर कहा गया है कि जीव का मूल स्वभाव उपादान है क्योंकि यहांपर जीव की मुक्तिकी ही बात लेनी है इसलिये यह बताया है कि जीव को मुक्ति में उपादान क्या है और निमित्त क्या है? जीव का मूल स्वभाव उपादान के रूप में लिया गया है। यहां पर समस्त द्रव्यों की सामान्य बात नहीं है किंतु विशेष जीव द्रव्यकी मुक्तिको ही बात है।

जीवकी पूर्ण शक्ति उपादान है यदि उसकी पहचान करे तो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूप उपादान कारण प्रगट हो और मुक्ति प्राप्त हो। जीव का मूल स्वभाव ही मुक्ति प्राप्त करना है वह अंतरमें है, अंतरंगकी शक्ति में से मुक्ति प्रगट होती हैं, किसी देव, गुरु, शास्त्र वाणी अथवा मनुष्य शरीर इत्यादिपरकी सहायता से जीव की मुक्ति नहीं होती।

प्रश्न—जो सच्चे गुरु होते हैं वे भूलें हुअें को मार्ग तो बतलाते हो है इसलिये उनको इतनी सहायता तो मानी ही जायगी?

उत्तर—जो भूला हुआ है वह पूछकर निश्चय करता है सो किस के ज्ञान से निश्चय करता है। भूले हुये के ज्ञान से अथवा गुरु के ज्ञान से? गुरु कहीं किसी के ज्ञान में निश्चय नहीं करा देते किन्तु जीव स्वयं अपने ज्ञान में निश्चय करता है इसलिये जो समझता है वह अपनी ही उपादान शक्ति से समझता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैसे किसीको सिद्धपुर जाना है उसने किसी जानकार से पूछा कि सिद्धपुर कहां है? तब उसने जवाब दिया कि (१) यहां से सिद्धपुर ८ कोस दूर है (२) मार्ग में जाते हुये बीचमें दो बडे शितल छायावाले वटवृक्ष मिलेंगे (३) आगे चलने पर एक मीठे पानी का अमृतसरोवर मिलेगा। उसके बाद तत्काल ही सिद्धपुर आयगा। इस प्रकार जानकारने कहा किन्तु उस पर विश्वास करके निश्चय कौन करता है? बताने वाला या भूला हुआ आदमी? जो भूला है वह अपने ज्ञान में निश्चय करता है इसी प्रकार मुक्ति की आकांक्षा रखनेवाला शिष्य पूछता है कि मुक्ति का अंतरंग कारण और बहिरंग कारण क्या है? और प्रभो! मेरी सिद्धदशा कैसे प्रगट होगी, उसका उपाय-मार्ग क्या है? श्री गुरु उसका उत्तर देते हैं:—

(१) आत्माको पहिचान से और स्वाश्रय को पूर्णतासे सिद्धदशा प्रगट होती है (२) आत्मा की सच्ची पहिचान और श्रद्धा करने पर स्वभाव की परमशांति का अनुभव होता है आत्माकी श्रद्धा और ज्ञानरूपी दो वटवृक्षों की शीतलता सिद्धदशा के मार्ग में आती है। (३) उसकेबाद आगे बढने पर चारित्रदशा प्रगट होती है अर्थात् स्वरूप रमणतारूप अमृत सरोवर आता है, इसप्रकार सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्ररूप मोक्षमार्ग पूर्ण होनेपर केवलज्ञान और सिद्धदशा प्रगट होती है। यहां पर उपादान निमित्त सिद्ध करना है जब शिष्य तैयार होकर श्रीगुरु से पूछता है कि प्रभु! मुक्ति कैसे होगी? तब श्री गुरु उसे मुक्ति का उपाय बताते हैं किन्तु जिसप्रकार उपाय बताया है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसीप्रकार विश्वास लाकर निश्चय कौन करता है? बतानेवाला या भूला हुआ? जो अपने ज्ञानमें भूला हुआ है वही यथार्थ समझ से भूल को दूर करके अपने ज्ञानमें निश्चय करता है।

यह तो मुक्ति का उपाय है, उसको महिमा को जानना चाहिये। जैसे कोई हीरा माणिक की कीमत को जाने और जवाहरात की दुकान पर बैठे तो झट लाखों रुपया के पैदायश हो और कपडे को मैल न लगे किंतु यदि हलवाई को दुकान पर बैठे तो जल्दी पैदायश न हो और कपडे को मैल लगे इसीप्रकार यदि आत्माके चैतन्य स्वभाव को पहचान कर उसकी कीमत करे तो मोक्षरुपी आत्मलक्ष्मी झट प्राप्त हो जाय। स्वरुप की शक्ति का भान सो हीरा का व्यापार है, उसमें मुक्ति-लक्ष्मी झट प्राप्त होजाती है और आत्मा को कर्ममल नहीं लगता। आत्मा की प्रतीति कें विना कभी भी मुक्ति नहीं होती और कर्ममल लग जाता है।

आत्मा के अंतरंग में से आत्मा के गुणों को ग्रहण किया जा सकता है इसलिये आत्मा उपादान है, जिसम से गुण का ग्रहण हो वह उपादान है। चिदानंद भगवान आत्मा अपनी अनंत शक्ति से देहमें विराजते हैं उसे पहचाम कर उसमें से मुक्ति का माल निकालना है। यहां उपादान का स्वरुप बताया गया है। अब निमित्त का स्वरुप बताते हैं:—

'है निमित्त पर योग तें' अर्थात् जब आत्मा अपने स्वरूपकी पहिचान करता है तब जो सच्चे देव, शास्त्र, गुरु संयोगरूप में उपस्थित हों वे निमित्त कहलाते हैं। उपादान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निमित का यह संबंध अनादिकालीन है, सिद्धदशामें भी आत्माकी शक्ति उपादान है और स्थितिमें अधर्म द्रव्य, परिणमन में कालद्रव्य इत्यादि निमित्त हैं। उपादान और निमित्त यह दोनों अनादिकालीन है।

कोई यह कहे कि "यदि कोई यह माने कि सब मिलकर एक आत्मा ही है और कोई यह माने कि अनंत आत्मा पृथक् हैं किन्तु सबका साध्य तो एक ही है न?" तो यह बात बिल्कुल गलत है। जिसने एक ही आत्मा को माना है वह उपादान निमित्त इन दो वस्तुओं को नहीं मानता इसलिये वह अज्ञानी है और जो यह मानता है कि "अनंत आत्मा प्रत्येक भिन्न भिन्न हैं, मैं स्वाधीन आत्मा हूं" उसने वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जान लिया है। यह बात गलत है कि सब का साध्य एक ही है। ज्ञानी अज्ञानी दोनों के साध्य पृथक् ही हैं।

जब आत्मा अपनी उपादान शक्ति से औंधा गिरता है तब कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्र इत्यादि निमित्तरूप होते हैं और जब अपनी उपादान शक्ति से सीधा होता है तब सच्चे देव, शास्त्र, गुरु निमित्तरूप होते है निमित्त तो पर वस्तुकी उपस्थिति मात्र है वह कहीं कुछ करवाता नहीं है अपनी शक्ति से उपादान स्वयं कार्य करता है, उपादान और निमित्त दोनों अनादि हैं किन्तु निमित्त उपादानको कुछ देता लेता नहीं है ॥३॥

—निमित्त का तर्क—

निमित्त कहै मोकों सबै, जानत है जगलोय;
तेरो नाव न जान ही, उपादान को होय ॥ ४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थः—निमित्त कहता है कि जगत् के सभी लोग मुझे जानते हैं और उपादान कौन है, उसका नाम तक नहीं जानते।

समस्त जगत् के लोग निमित्त का नाम जानते हैं। सहारा हो तो बेल चढे, खान पानकी अनुकूलता हो तो धर्म हो, मानवदेह हो तो मुक्ति हो इस प्रकार निमित कार्य से होता है यों समस्त विश्व के जीव मानते हैं और इसीलिये वे निमित्त को जानते हैं परंतु उपादान को कोई नहीं जानता। सारा संसार यह मानता हैं कि यदि बाह्य निमित्त ठीक हो तो आत्मा सुखी होता है किन्तु उपादान का तो कोइ नामतक नहीं जानता, इसलिये हे उपादान तू मुफ्त की बढाई क्यों किया करता है क्या लंगडा आदमी बिना लकडी के चल सकता है, लकडी का निमित्त आवश्यक है इसलिये निमित्त का हीं बल है। इसप्रकार निमित्त तर्क करता है किन्तु निमित्त का यह तर्क गलत है। लंगडा अपनी योग्यता से चलता है यदि लकडी के कारण चलता हो तो लक्डी से मुर्दा भी चलना चाहिये किन्तु मुर्दे में चलने की योग्यता नहीं है इसलिये वह नहीं चलता। इसका अर्थ यह है कि उपादान की शक्ति से ही कार्य होता है।

निमित्त कहता है कि यदि आप निमित्त के बल को नहीं मानते तो भगवान की प्रतिमा को क्यों नमस्कार करते हो? वह भी निमित है या नहीं? और फिर मुक्ति प्राप्त करने के लिये मानव शरीर तो चाहिये ही? और यदि कान ठीक हों तभी तो सुनकर धर्म प्राप्त होता है? तात्पर्य यह है कि सर्वत्र निमित्त का ही बोलवाला है, दुनियां में किसीसे मी पूछो तो सब यही कहेंगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस संवाद से यह सिद्ध हो जायगा कि निमित्त की ओर से दिये गये उपरोक्त सभी तर्क वृथा है। निमित्तने जो कुछ कहा है वह सब भवभ्रमण करने वाले जगत् के अज्ञानी जीव मानते हैं, वे उपादानको नहीं पहचानते। इस संवादमें उपादान निमित्त के सिद्धांत की बात है। उपादान–निमित्त दोनों अनादि अनंत है। इसमें उन दोनों का यथार्थ ज्ञान करने के लिये उपदेश है।

अनादि कालसे जगत के अज्ञानी जीव यह नहीं जानते कि उपादान कौन है? वे तो निमित्त को ही जानते हैं। छोटा बालक भी कहता है कि यदि अध्यापक हो तो अक्षर सीखे जांय परंतु यदि अध्यापक न हो तो कौन सिखाये? किन्तु सच तो यह है कि जो प्रारंभिक अक्षर अ आ इत्यादि सीखता है वह उसके सीखने की अपनी शक्ति से सीखता है किसी भैंसे इत्यादिमें अ आ इत्यादि सिखनेकी शक्ति नहीं है इसलिये वे नहीं सीख सकते। समस्त जगत् निमित्तको जानता है बालक से लेकर मांधाता अज्ञानी मुनि से पूछो कि मुक्ति कैसे होती है? तो कोई कहेगा कि बाह्य क्रिया से और कोई कहेगा कि पुण्य से मुक्ति होती है किन्तु वह कोई आत्माको मूल उपादान शक्तिको नहीं जानते। निमित्त ने अज्ञानियोंको अपने पक्षमें रखकर यह युक्ति रखी है।

अब ज्ञानियोंको अपने पक्षमें लेकर उपादान उसका उत्तर देता है:—

उपादान कहैं रे निमित्त, तू कहा करै गुमान
मोकों जानें जीव वे जो हैं सम्यक्वान ॥५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थः—उपादान कहता है कि हे निमित्त ! तू अभिमान किस लिये करता है जो जीव सम्यक्ज्ञानी हैं वे मुझे जानते हैं। आत्मा के स्वभावको समझने वाले ज्ञानियोंको अपने पक्ष में रखकर उपादान कहता है किः—हे निमित्त ! तूं अभिमान क्यों करता है ? तेरा अभिमान मिथ्या है । जगत् के अज्ञानियों के झूंड तुझे जानते हैं तो इसमें तेरी क्या बढाई है ? किन्तु मुझे सभी ज्ञानी जानते हैं । राख तो घर घरमें हर एक चूल्हे में होती है इसलिये कहीं राख कीमती नहीं मानी जाती और हीरे के व्यापारी थोडे होते हैं इसलिये हीरे की कीमत कम नहीं होजाती । इसी प्रकार जगत् के बहुत से जीव यह मानते हैं कि दूसरे से काम होता है किन्तु इतनेमात्र से कहीं पर से कार्य नहीं हो जाता । उपादान स्वभाव की बात को तो ज्ञानी ही जानते हैं । अज्ञानियों की वहां गति नहीं है ।

निमित्त से कार्य नहीं होता तथापि जब जीव स्वयं समझता है तब सच्चे गुरु का ही निमित्त होता है । गुरु से ज्ञान नहीं और गुरु के विना ज्ञान नहीं होता । सच्चे गुरु के विना त्रिकाल में भी ज्ञान नहीं हो सकता और त्रिकाल में भी गुरु किसी को ज्ञान नहीं दे सकते । जब जीव अपनी शक्ति से सच्ची पहिचान करता है तब सत्पुरुष की ही वाणी की उपस्थिति होती है किन्तु सत्पुरुष की वाणी से जीव समझता नहीं है । जीव यदि स्वतः नहीं समझता तो वाणी को निमित्त नहीं कहा जा सकता ।

प्रश्न—आप कहते हैं कि विना निमित्त के कार्य नहीं होता और निमितसे भी नहीं होता । किन्तु इन दो बातोमें से यथार्थ कौन सी है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तर—दोनों ही यथार्थ हैं। क्यों कि निमित्त उपस्थित तो रहता ही है, और निमित्त से कोई कार्य नहीं होता। इस प्रकार दोनों पहलुओं को समझ लेना चाहिये। जैसे दो आंखो वाला आदमी सब कुछ ठीक देखता हैं, एक आंख वाला–काना आदमी सब कुछ ठीक नहीं देख पाता और दोनों आंखों से अंध आदमी कुछ भी नहीं देख सकता। इसी प्रकार जो उपादान और निमित्त को वे जैसे हैं उसी प्रकार जाने तो ठीक जाननेवाला (सम्यक्‌ज्ञानी) है। और जो यह मानता है कि निमित्त नहीं है अथवा निमित्त से कार्य होता है तो उपरोक्त (कानेके) दृष्टान्त की भांति उसके ज्ञानमें भूल है। और जो निमित्त–उपादान दोनों नहीं हैं–यों दोनों को ही नहीं जानता–मानता वह अंधेकी भांति विलकुल ज्ञानहीन है।

प्रथम दोनों आंखों से सब कुछ ठीक देख–जान कर पश्चात् खास पदार्थ की ओर की एकाग्रता के लिये दूसरे पदार्थ की ओर से आंख बन्द कर ले तो वह ठीक है। इसी प्रकार पहले उपादान निमित्त को ठीक जानकर पश्चात् उपादान स्वरूप में एकाग्रता करने के लिए निमित्त का लक्ष छोड देना ठीक है। किन्तु पहले उपादान निमित्त को वह जैसा है उसी प्रकार यथार्थ रीत्या समझ लेना चाहिये।

जब आत्मस्वभाव की प्रतीति करता हैं तब निमित्त होता है, इस प्रकार ज्ञान करने के लिये दोनों हैं, किन्तु आदरणीय दोनों नहीं हैं। आदरणीय तो उपादान हैं, और निमित्त हेय है। उपादान की शक्ति से काय होता है। जो सम्यग्ज्ञानी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है, अर्थात् आत्मा को पहचानने वाले हैं वे ही उपादान की शक्ति को जानते हैं।

निमित्त कहता है कि—

कहैं जीव सब जगत के, जो निमित्त सोई होय।
उपादान की बात को, पूछे नाहीं कोय ॥ ६ ॥

अर्थः—जगत के सब जीव कहते हैं कि—जैसा निमित्त होता है वैसा ही कार्य होता है। उपादान की बात को तो कोई पूछता ही नहीं है।

निमित्त अपनी बलवता बताने के लिये कहता है कि—यदि अनुकूल-ठीक निमित्त हो तो काम हो; रोटी मिले तो जीवन रहे, मानवदेह मिले तो मुक्ति हो, काल ठीक हो तो धर्म हो, इस प्रकार सारी दुनियां कहती है। किन्तु यह कौन कहता है कि मनुष्य शरीर के विना मुक्ति होती है? इसलिये देखो, शरीर के निमित्त से ही काम होता है न? और यदि आप निमित्त से कुछ नहीं मानते हो तो भगवान की प्रतिमा को क्यों मानते हो? इस से सिद्ध हुआ कि निमित्त ही बलवान है।

निमित्त का यह तर्क ठीक नहीं है। मिथ्यात्व को जितने-वाले जैन स्वतंत्रवस्तुस्थितिको मानते हैं भगवान की प्रतिमा के कारण अथवा उस ओर के राग के कारण धर्म नहीं मानते, प्रतिमा की ओर का जो शुभराग है वह अशुभराग से बचने के लिये है। जैन अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव राग से या पर से कदापि धर्म नहीं मानते। जैन तो आत्मस्वभाव से धर्म मानते हैं।

सम्यग्दृष्टि जीव आत्मस्वभावकी प्रतीति होनेपर जब शुद्धस्वभाव के अनुभव में स्थिर नहीं रह सकता तब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अशुभराग को छोडकर उसके शुभराग आता है। और उस राग में उपस्थित वीतराग प्रतिमा निमित्तरूप होती है। स्वयं अशुभ भावसे बचता है इतना उसे लाभ है, किन्तु प्रतिमा से अथवा अवशिष्ट राग से यदि आत्माका लाभ माने तो वह मिथ्यादृष्टि है। जब सम्यग्दृष्टि को शुभराग होता है तब उसमें प्रतिमा निमित्तरूप होती है, यह न जाने तो भी वह मिथ्यादृष्टि है। इस में निमित्त का ज्ञान करने की बात है, किन्तु यह नहीं है कि निमित्त से कोई कार्य होता है।

आत्मस्वरूप को पहचान के बाद जब तक स्वरूप की पूरी भक्ति न हो अर्थात् वीतरागता न हो वहां तक बीच में शुभराग आये विना नही रहता। और शुभराग के निमित्त भी होते ही हैं। किन्तु जैन-सम्यक्त्वी रागसे अथवा निमित्त से धर्म नहीं मानते। जो राग या निमित्त से धर्म मानता है वह मिथ्यादृष्टि है।

निमित्त कहता है कि भले हो सम्यक्त्वो रागसे या निमित्त से धर्म नहीं मानते किन्तु यदि सामने सुई पडी हो तो सुई का ज्ञान होगा या कैंची का? अथवा सामने आदमी का चित्र देखकर आदमी का ज्ञान होगा या घोडे का? सामने जैसा निमित्त होगा वैसा हो तो ज्ञान होगा। इसका यह अर्थ हुआ कि निमित्त से हो ज्ञान होता है। इसलिये निमित्तको ही बलवान मानना होगा। निमित्त का यह तर्क है। निमित्त का कथन बहुत लंबा है। अज्ञानी ऐसा मानते है कि जो भी होता है वह निमित्त से ही होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपादान को जाननेवाले ज्ञानी कहते हैं कि निमित्त से ज्ञान होता ही नहीं किन्तु उपादान की शक्ति से ही होता है। ज्ञान तो अपनी स्मृति से होता है। सुई को देखने से अपने ज्ञान की स्मृति नहीं हुई, सुई को देखने का काम ज्ञानने किया या सुई ने? ज्ञान से ही जानने का कार्य हुआ है। यदि सुई से ज्ञान होता हो अंधे आदमी के सामने सुई रखने पर उसे तत्संबंधी ज्ञान होना चाहिये। किन्तु ऐसा नहीं होता, क्योंकि अंधे में वह शक्ति ही नहीं है। सुई तो जड है, जड में से ज्ञान नहीं आता। अज्ञानी की दृष्टि पर–निमित्त पर होने से वह स्वाधीन ज्ञान को नहीं जानता इसलिये वह मानता है कि पर के कारणसे ज्ञान हुआ है अज्ञानी उपादान स्वरूप की बात भी नहीं पूछते। "चावल विना अग्नि के पक सकते हैं? कदापि नहीं इसलिये चावल अग्नि से पके या चावल से?" अग्नि से चावल पकते हैं यह अंधदृष्टि से दिखाई देता है किन्तु स्पष्टदृष्टि से तो चावल चावल से ही पके हैं। पाकरूप अवस्था चावल में ही हुई है अग्निमें नहीं। चावलमें ही स्वतः पकने की शक्ति है इसलिये वे पके हैं. वे अग्नि अथवा पानी से नहीं पके इसी प्रकार रोटी भी स्वतः पकी है अग्नि अथवा तवे से नहीं पकी हैं।

निमित्त अपनी युक्तिको रखता हुआ कहता है कि:— हे उपादान जगत् में यह कौन कहता है कि रोटी स्वतः पकी है, अग्नि से रोटी नहीं पकी। तू समस्त विश्व से पूछ देख। 'गेहूं के परमाणुओं की जब पक्की अवस्था होना थी तब अग्नि और तवा भी मौजूद था किन्तु उससे रोटी नहीं बनी'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकारकी तेरी लंबी लंबी बातें जगत् में कौन करता है? सीधी और स्पष्ट बात है कि अग्नि से रोटी पकी है, भला! इसमें क्या पूछना है? इसलिये यह बात गलत है कि उपादानकी शक्ति से ही कार्य होता है।

उपादान उत्तर देता है:—

उपादान विन निमित्त तू कर न सके इक काज।
कहा भयौ जग ना लखै जानत है जिनराज ॥७॥

अर्थः— उपादान कहता है कि अरे निमित्त एक भी कार्य बिना उपादान के नहीं हो सकता, इसे जगत् नहीं जानता तो क्या हुआ जिनराज तो उसे जानते है।

उपादान जिनराज को अपने पक्षमें रखकर कहता है कि हे निमित्त! तू रहने दे। जगत् के प्रत्येक पदार्थ के कार्य अपनी शक्ति से ही होरहे हैं कोई पर उसे शक्ति नहीं देता। यदि जीव इस प्रकार के स्वरूप को समझे तो उसे अपने भाव की ओर देखने का अवकाश (-अवसर) रहे और अपने भावमें दोषों को दूर करके गुण ग्रहण करे, किंतु यदि 'कर्म मुझे हैरान करते हैं और सद्गुरु मुझे तार देंगे,' इस प्रकार निमित्त से कार्य का होना मानेगा तो उसमें कहीं भी स्वयं तो आया ही नहीं, उसमें अपनी ओर देखने का अवकाश ही नहीं रहा और केवल पराधीन दृष्टि रह गई।

रोटी अग्नि से नहीं पकी किन्तु निजमें ही वह विशेषता है कि वह पकी है। अग्नि और तवे के होने पर भी कहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रेत नहीं पकती क्योंकि उसमें वैसी शक्ति नहीं है। जो पक्व पर्याय हुई है वह रोटी की हुई है या तवे को ? रोटी स्वयं उस पर्यायरूप हुई है इसलिये रोटी स्वयं पकी है।

यदि शिष्य के ही उपादान में समझने को शक्ति न हो तो गुरु क्या करे ? श्रीगुरु भले ही लाख प्रकार से समझायें किन्तु शिष्य को अपनी शक्ति के विना समझमें नहीं आ सकता इसलिये उपादान कें विना एक भी कार्य नहीं हो सकता। निमित्तने कहा था कि जगत् के प्राणी उपादान की वात भी नहीं जानते। उपादान कहता है कि जगत् के अंध प्राणी उपादान के स्वरूप को नहीं समझते तो क्या हुआ परंतु त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर मुझे जानते हैं। जगत् के वहुत से अंधे तुझे मानते हैं तो उससे तुझे क्या लाभ हुआ ? मुझे तो एक त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञदेव ही बस है। हजारों भेडों के सामने एक सिंह ही पर्याप्त है। जहां सिंह आता है वहां सभी गाडरें पूंछ दवाकर भाग जाती हैं, इसीप्रकार जगत् के अनंत जीवों का यह अभिप्राय है कि 'निमित्त से काम होता है' किन्तु वे सब अज्ञानी हैं इसलिये उनका अभिप्राय यथार्थ नहीं है और 'उपादान की शक्ति से ही सर्व कार्य होते हैं' यह मानने वाले थोडे ही जीव हैं तथापि वे ज्ञानी हैं, उनका अभिप्राय सच है। सत्य का संख्या के साथ संबंध नहीं होता।

छप्पन के अकालमें पशुओं में खडे रहने की भी शक्ति नहीं रही थी। यदि उन्हें सहारा देकर भी खडा किया जाता तो भी वे गिर पडते थे। जहां भूखे पशुमें निज में ही खडे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहने की शक्ति न हो वहां बाह्य आधार के बल से कैसे खड़ा रखा जा सकता है, यदि उपादानमें ही शक्ति न हो तो किसी निमित्त के द्वारा कार्य नहीं हो सकता।

आत्मा के स्वभाव से ही आत्मा के सब काम होते हैं। पुण्य पाप के परिणाम स्वयं करने से होते हैं, स्वयं जैसे परिणाम करे वैसे होते हैं। दूसरे जीवों का आशीर्वाद मिल जाय तो भला हो और पुण्य का समुद्र फट कर आत्माको मुक्ति होजाय यह बात गलत है। आत्मा का कार्य पराधीन नहीं है। भगवानकी साक्षात् उपस्थिति भी उसे तारने के लिये समर्थ नहीं है और शिरच्छेद करने वाला शत्रु भी डुबाने के लिये समर्थ नहीं है। 'प्रत्येक पदार्थ सदा भिन्न है, मैं भिन्न आत्मा हूं और तू भिन्न आत्मा है, मैं तुझे कुछ भी नहीं कर सकता तू अपने भाव से समझे तो तेरा कल्याण हो' इस प्रकार भगवान तो स्वतंत्रता की घोषणा करके सदा उपादान पर उत्तरदायित्व डालते हैं, उपादान की जागृति के बिना कदापि कल्याण नहीं होता ॥७॥

—निमित्त कहता है कि—

देव जिनेश्वर गुरु यती अरु जिन आगम सार
इह निमित्तसें जीव सब पावत है भवपार ॥८॥

अर्थः—निमित्त कहता है कि जिनेश्वरदेव, निर्ग्रंथगुरु और वीतराग का आगम उत्कृष्ट है इन निमित्तों के द्वारा सभी जीव भव का पार पामते हैं।

जिनेश्वरदेव श्री सर्वज्ञ भगवानको माने बिना कदापि आत्मा की मुक्ति नहीं होती। किसी कुदेवादिको माननेसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुक्ति नहीं होती, इसलिये पहले जिनेश्वरदेवको पहचानना चाहिये। इस प्रकार पहले निमित्त की आवश्यकता आ ही जाती है, क्योंकि निमित्त की आवश्यकता होती है इसलिये पचास प्रतिशत मेरी सहायता से कार्य होता है, यह निमित्तका तर्क है।

यहां पर जीव जब अपना कल्याण करता है तब निमित्त के रूपमें श्री जिनेश्वरदेव ही होते हैं उनके अतिरिक्त कुदेवादि तो निमित्तरूप कदापि नहीं होते-इतना सत्य है, किन्तु श्री जिनेश्वरदेव आत्मा का कल्याण कर देते हैं अथवा पचास प्रतिशत सहायता करते हैं यह बात ठीक नहीं है।

सच्चे देव, निर्ग्रंथ गुरु और त्रिलोकीनाथ परमात्मा के मुख से निकली हुई ध्वनि अर्थात् आगम सार इन तीन निमितों के विना मुक्ति नहीं होती। यहां पर 'आगमसार' कहा है। इसलिये आगम के नाम पर दूसरी अनेक पुस्तकें प्रचलित हैं उनकी यहां पर बात नहीं है किन्तु सर्वज्ञ की वाणी से परंपरा आये हुये सत्शास्त्रों की बात है। अन्य कोई कुदेव, कुगुरु अथवा कुशास्त्र तो सत् का निमित्त भी नहीं हो सकता। सच्चे देवादि ही सत् के निमित्त हो सकते है। इतनी बात तो बिल्कुल सच है उसीको पकडकर निमित्त कहता है कि भाई उपादान! अपने ही एकांतको नहीं खींचना चाहिये, कुछ निमित का भी विचार करना चाहिये अर्थात् वह कहना चाहता है कि निमित्त भी सहायक होता है।

निमित्तकी तर्क का एक अंश इतना सत्य है कि:—आत्म-कल्याणमें सच्चे देव गुरु शास्त्र ही निमित्तरूपमें उपस्थित होते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं, उनकी उपस्थिति के बिना त्रिकालमें भी कोई मुक्ति नहीं पा सकता। सभीमार्ग समान हैं यों माननेवाला तीनकाल और तीनलोकमें सम्यग्दर्शन को नहीं पा सकता, प्रत्युत वह मिथ्यात्व के महापाप की पुष्टि करता है। अर्थात् सर्वज्ञ वीतरागदेव, साधक संत मुनि और सर्वज्ञ की वाणी ही निमित्त होती है इतना तो सत्य है किंतु उससे आत्मा का कल्याण नहीं होता। वह आत्महित में सहायक नहीं है, कल्याण तो आत्मा स्वयं स्वतः समझे तभी होता है।

समझने की शक्ति तो सभी आत्माओमें त्रिकाल है। जब उस शक्ति की संभाल करके आत्मा समझता है तब निमित्त के रूपमें परवस्तु सच्चे देव इत्यादि ही होते हैं। कुदेवादि को मानता हो और उन्हें सच्ची समज हो यह नहीं हो सकता, इसबात को आगे रखकर निमित्त कहता कि पहले मेरी ही आवश्यकता है, मुझसे ही कल्याण होता है।

उपादान उसकी इस तर्क का खंडन करता हुआ कहता है कि:—

यह निमित्त इह जीव के मिल्यो अनंतीवार।
उपादान पलटयो नहीं तो भटक्यो संसार ॥९॥

अर्थः—उपादान कहता है कि यह निमित्त इस जीव को अनंतवार मिले किंतु उपादान-जीव स्वयं नहीं बदला इसलिये वह संसारमें भटकता रहा।

यदि देव, गुरु, शास्त्र का निमित्त आत्म कल्याण कर देता हो तो यह जीव साक्षात् त्रिलोकीनाथ के पास अनंतवार गया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फिर भी समझे बिना ज्यों का त्यों वापिस आगया। उपादान अपनी शक्ति से नहीं समझा। भगवान कोई अपूर्व स्वरूप कहते हैं यों परमार्थको समझने की चिंता नहीं की और व्यवहार की स्वयं मानी हुई बात के आने पर यह मान लेता है कि मैं यही कहता था और वही भगवान ने कहा है। इस प्रकार अपने गज से भगवान का नाप करके विपरीत पकडको ही दृढ करता है, निमित्त भले ही सर्वोत्कृष्ट हो तथापि उपादान न बदले तो उसे सत् समझ में नहीं आता। अनंतवार सच्चे रत्नादिक की सामग्रीको जुटाकर साक्षात् तीर्थंकर की पूजा की किन्तु निमित्त के अवलंबन से रहित अपने स्वाधीन स्वरूप को नहीं समझा, इसलिये धर्म नहीं हुआ, इसमें तीर्थंकर क्या करे।

सच्चे ज्ञानी गुरु और सत् शास्त्र भी अनंतवार मिले किन्तु स्वयं अंतरंग स्वभाव को समझ कर अपनी दशा को नहीं बदला इसलिये जीव संसारमें ही भटकता रहा।

निमित्तने कहा था कि:—देव, गुरु, शास्त्र के निमित्तको पाकर जीव भव पार हो जाता है, उसके विरोधमें उपादान ने कहा कि उपादान-जीव स्वयं धर्मको नहीं समझा तो सच्चे देव, गुरु, शास्त्र के मिलने पर भी संसारमें परिभ्रमण करता है। यदि जीव स्वयं सत्को समझ ले तो देव, गुरु, शास्त्र को समझने का निमित्त कहलाये, किंतु यदि जीव समझे ही नहीं तो निमित्त कैसे कहलाये। यदि उपादान स्वयं कार्यरूप हो तो प्रस्तुत वस्तुको निमित्त कहा जा सकता है किन्तु उपादान स्वयं कार्य रूपमें हो ही नहीं तो निमित्त भी नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहा जा सकता। प्रत्येक लटमें तेल डालकर मस्तक सुंदर बनाया, यह तभी तो कहा जायगा जब मस्तकमें बालकी लटें हो किन्तु यदि सिरमें बाल ही न हों तो उपमा कहां लगेगी! इसी प्रकार प्रस्तुत वस्तुको 'निमित' की उपमा तभी दी जा सकती है जब उपादान स्वयं जागृत होकर समझे. किन्तु यदि उपादान ही न हो तो निमित्त किसका कहलाये? इसलिये कार्य तो उपादान के ही आधिन होता है।

सच्चे देव गुरु शास्त्र के निमित्त के विना कदापि सत्य नहीं समझा जा सकता, किंतु इससे अपनी समझने की तैयारी हो तव देव गुरु शास्त्र को ढुंढने के लिये जाना पडे ऐसा उपादान पराधीन नहीं है। हां, ऐसा नियम अवश्य है कि जहां अपनी तैयारी होती है। वहां निमित्त का योग अवश्य होता ही है। धर्मक्षेत्र महाविदेहमें बीस महा धर्म धुरंधर तीर्थंकर तो सदा विद्यमान होते हैं। महाविदेहमें तीर्थंकर न हों यह कदापि नहीं हो सकता। यदि अपनी तैयारी हो तो चाहे जहां सत् निमित्त का योग मिल ही जाता है और यदि अपनी तैयारी न हो तो सत् निमित्त का योग मिलने पर भी सत् का लाभ नहीं होता। यहांपर संवादमें निमित्त की ओर से तर्क करनेवाला जीव ऐसा लिया है जो सयाना है, समझने के लिये तर्क करता है और जो अंतमें उपादान की सब यथार्थ बातों को स्वीकार करेगा वह ऐसा हठाग्रही नहीं है कि अपनी ही बात को खींचता रहे। यहांपर ऐसे ही जीव की बात हें जो सत्य—असत्य का निर्णय करके सत्य को तत्काल ही स्वीकार करे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देहादि की क्रिया से मुक्ति होती है अथवा पुण्य से धर्म होता है इसप्रकार जीव ने अपनी विपरीत मान्यता बना रखी है, ऐसी स्थिति में भगवान के पास जाकर उनका उपदेश सुनकर भी जीव को धर्म का किंचित्मात्र भी लाभ नहीं हुआ। भगवान तो कहते हैं कि आत्मा देह की क्रिया कर ही नहीं सकता और पुण्य विकार हैं उससे आत्मधर्म नहीं हो सकता यह वात उसके ज्ञान में नहीं जमी। यदि स्वयं समझे तो लाभ हो और तव भगवान इत्यादि को निमित्त कहा जाय। सच्चे निमित्त के बिना ज्ञान नहीं होता किन्तु सच्चे निमित्त के होनेपर भी स्वयं न समझे तो ज्ञान नहीं होता। तात्पर्य यह है कि निमित्त से ज्ञान नहीं होता। तो फिर निमित्त ने क्या किया? वह तो मात्र उपस्थित रहकर अलग रहा।

सामान्यतया लोग अनेकवार कहा करते हैं कि "मैंने तो उसे बहुत कहा किन्तु वह ठप्प होगया है" अर्थात् मेरे कहने का उसपर किंचित्मात्र भी असर नहीं हुआ, किंतु अरे भाई यदि वह मानता है तो अपने भाव से मानता है और यदि नहीं मानता है तो अपने भाव से वैसा करता है। किसी पर किसी का कोई असर होता ही नहीं है। निमित्त और उपादान दोनों स्वतंत्र पदार्थ हैं।

जीव को समझने के निमित्त अनंतवार मिले तथापि अपनी उपादान शक्ति से स्वयं नहीं समझा इसलिये संसार परिभ्रमण किया इससे सिद्ध होते हैं कि निमित्त का कोई असर उपादान पर नहीं है।

यहांपर उपादान निमित्त का संवाद चल रहा है। यहां तक ९ दोहों की व्याख्या की जा चुकी है। उपादान का अर्थ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्या है? जो अपने स्वभावसे काम करे सो उपादान है। और उस काम के समय साथ ही दूसरी वस्तु उपस्थित हो तो वह निमित्त है। उपादान और निमित्त दोनों जैसे हैं उनका वैसा ही निर्णय करना भी एक धर्म है धर्म दूसरे भी हैं, अर्थात् सच्चे निर्णय पूर्वक रागद्वेष को दूर करके स्थिरता करना सो दूसरा चारित्र धर्म है। आत्मवस्तु में अनंत धर्म हैं। धर्म अर्थात् स्वभाव। आत्माका जो भाव संसार के विकार भाव से वचकर अविकारी स्वभाव को धारण करता है वह आत्मा का धर्म है, इसलिये स्वभाव को समझना ही प्रथम धर्म है। जो जीव स्वभाव को नहीं समझता उसे जन्म-मरण के नाश का और मुक्तिदशा के प्रगट होने का लाभ नहीं मिलता। जो स्वाधीन स्वभाव को नहीं समझे ऐसे अज्ञानी जीव यह मानते हैं कि यदि दूसरी वस्तु हो तो आत्मा का कल्याण हो, उनका निर्णय ही उल्टा है। उन्हें आत्म कल्याण के सच्चे उपाय की खवर नहीं है।

जब आत्मकल्याण की भावनावाला जीव सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के द्वारा आत्मा का निर्णय करता है तब सच्चे देव, शास्त्र और गुरु की निमित्तरूप उपस्थिति होती है, किन्तु वे देव, शास्त्र, गुरु आत्मा का ज्ञान नहीं करा देते। यदि स्वयं अपने ज्ञानसे यथार्थ समझ सके तो समझा जा सकता है। विना ज्ञान के छह छह महीने तक उपवास किये फिर भी सच्ची समझ नहीं हो पाई इसलिये आत्म कल्याण नहीं हुआ।

प्रश्न—यह सब सूक्ष्म बातें हमारे किस कामकी ?

उत्तरः—यह आत्मा की वात है। आत्मकल्याण करना हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो यह जान लेना चाहिये कि कल्याण कहां होता है और कैसे होता है! अपना कल्याण अपने ही स्वभाव की शक्ति से होता है पर से नहीं होता। यदि अपने स्वभाव को समझ ले तो सच्ची श्रद्धा का लाभ हो और विपरीत श्रद्धा से होने वाली महा हानि दूर हो यही सर्व प्रथम कल्याण है।

आत्मा का निर्णय सच्चे देव शास्त्र गुरु से प्रगट होता है जब यह निमित्त ने कहा तब उपादान ने उसका उत्तर दिया कि भाई! यह निमित्त तो अनंतवार जीवको मिले किंतु स्वयं स्वभाव की महिमा को लाकर असंग आत्मतत्त्व का निर्णय नहीं किया इसलिये संसार में परिभ्रमण करता रहा। तात्पर्य यह है कि कोई निमित्त आत्मा को लाभ नहीं करता।

हे भाई! यदि पर निमित्त से आत्मा के धर्म होता है ऐसी पर द्रव्याश्रित दृष्टि करोगे तो परद्रव्य तो अनंत अपार हैं उसकी दृष्टि में कहीं भी अंत नहीं आयगा अर्थात् अनंत पर पदार्थकी दृष्टि से छूटकर स्व स्वभाव को देखने का अवसर कभी भी नहीं आयेगा किन्तु मैं परद्रव्यों से भिन्न हूं, मुझमें पर का प्रवेश नहीं है, मेरा कल्याण मुझ में ही है ऐसी स्वाधीन द्रव्यदृष्टि करने पर अनंत पर द्रव्यों पर से दृष्टि छूट जाती है और स्वभाव दृष्टि की दृढता होती है तथा स्वभाव की ओर की दृढता ही कल्याण का मूल है। परवस्तु तीन काल और तीन लोकमें हानि लाभ करने के लिये समर्थ नहीं है। यदि अपने भाव में स्वयं उलटा रहे तो परिभ्रमण करता है और यदि सीधा हो तो मुक्त हो जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रश्न—पैसा शरीर इत्यादि जो हमारे हैं वे तो हमारा लाभ करते हैं या नहीं ?

उत्तर—मूल सिद्धांतमें ही अंतर है, पैसा इत्यादि तुम्हारे हैं ही नहीं। पैसा और शरीर तो जड है, अचेतन है, पर हैं। आत्मा चैतन्य ज्ञान स्वरूप है। जड और चेतन दोनों वस्तुए त्रिकाल भिन्न ही हैं, कोई एक दूसरे की है ही नहीं पैसा इत्यादि आत्मा से भिन्न है, वे आत्मा के सहायक नहीं हो सकते। किंतु सच्चा ज्ञान आत्मा का अपना होने से आत्मा की सहायता करता है। पैसा, शरीर इत्यादि कोई भी वस्तु आत्मा के धर्म का साधन तो है ही नहीं, साथ ही उस से आत्मा के पुण्य पाप नहीं होते। 'पैसा मेरा है' ऐसा जो ममत्व भाव है सो अज्ञान है पाप है। और यदि उस ममत्व को कम करे तो उस भाव से पुण्य होता है। पैसे के कारण से पाप या पुण्य नहीं है, पैसा मेरा है और मैं उसे रखूं, ऐसा जो ममत्व रूप भाव है सो महा पाप है। वास्तव में यदि ममत्व को कम करे तो दान इत्यादि शुभ कार्यों में लक्ष्मी को व्यय करने का भाव हुये विना न रहे। यहां पर तो निमित्त उपादान के स्वरूप को समझने का अधिकार चल रहा है।

निमित्त की ओर से तर्क करने वाला जीव शास्त्रों का ज्ञाता है। शास्त्रों की कुछ वाते उसने जानी हैं इसलिये उन वातों को उपस्थित करके वह तर्क करता है। जिसने हिसाब लिखा हो उसे बीच में कुछ पूछना होता है और वह प्रश्न कर सकता है किन्तु जिसने अपनी सिलेठ कोरी रखी हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और कुछ भी न लिखा हो तो वह क्या प्रश्न करेगा? इसी प्रकार जिसने कुछ शास्त्राभ्यास किया हो अथवा शास्त्र श्रवण करके कुछ बातें को समझा हो तो वह तर्क उपस्थित करके प्रश्न कर सकता है किन्तु जिसने कभी शास्त्र को खोला ही न हो और क्या चर्चा चल रही है इसकी जिसे खबर ही न हो तो वह क्या प्रश्न करेगा?

यहां पर शिष्य शास्त्र पढकर प्रश्न करता है कि हे उपादान! तुम कहते हो कि आत्मा का धर्म अपने उपादान से ही होता है, निमित्त कुछ नहीं करता किंतु भव्य जीवों को जो क्षायिक सम्यक्त्व होता है वह तो केवली श्रुतकेवली के सान्निध्य में ही होता है यह शास्त्रों में कहा है तब वहां निमित्त का जोर आया या नहीं?

निमित्त इस प्रकार की तर्क उपस्थित करता है—

कै केवलि कै साधु के निकट भव्य जो होय।
सो क्षायक सम्यक् लहै यह निमित्त बल जोय ॥१०॥

अर्थः—निमित्त कहता है कि यदि केवली भगवान अथवा श्रुतकेवली मुनि के पास भव्य जीव हो तो ही क्षायिक सम्यक्त्व प्रगट होता है यह निमित्त का बल देखो। (यहां पर तर्क उपस्थित करते हो निमित्त की भाषा लूली मालूम होती है, "आसन्न भव्य जीव हो तो ही क्षायिक सम्यक्त्व प्रगट होता है," यहां ऐसा भव्य जीव के कहते ही उपरोक्त तर्क के शब्दों में यह बात स्पष्ट हो जाती है कि योग्यता उस जीव की अपनी ही है इसीलिये क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त करता है इस बात तर्क का शब्द में ही आ जाती है) क्षायिक सम्यक्त्व आत्मा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की वह सम्यक् प्रतीति है कि जो केवलज्ञान को लेकर ही रहती है अर्थात् वह ऐसी आत्म प्रतीति है जो कभी पीछे नहीं रहती। श्रेणीकराजा पहले नरक से निकल कर भावी चौवोसी के प्रथम तीर्थंकर होंगे उन्हें ऐसा क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि को आत्मा की अति दृढ श्रद्धा होती है, वह ऐसी दृढ होती है कि तीन लोक बदल जांय और इन्द्र उसे डिगाने के लिये उतर आये तो भी उसकी श्रद्धा नहीं बदलती। उसे अप्रतिहत श्रद्धा होती है वह चौदह ब्रह्माण्ड से हिलाया नहीं हिलता और त्रिलोक में उथल पुथल हो जाय तो भी मनमें भय संदेह नहीं लाता, ऐसा निश्चल सम्यक्त्व तो क्षायिक सम्यक्त्व है।

निमित्त का वकील तर्क करता है कि श्रेणिक राजा, भरत चक्रवर्ती इत्यादि को केवली के निकट ही क्षायिक सम्यक्त्व हुआ था, देखो यह है निमित्त का जोर। शास्त्रों में लिखा है कि तीर्थंकर भगवान, केवली भगवान अथवा श्रुतकेवली (-जिन शासन के बाह्य और अंतरंग श्रुतज्ञान में परिपूर्ण मुनिराज) जहां विराजित हों वहां उनके चरण कमल में ही क्षायिक सम्यक्त्व होता है, उनके अभाव में नहीं होता इसलिये निमित्त ही बलवान् है। अन्य निमित्त हों तो क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता। हे उपादान ! यदि तेरी ही शक्ति से काम होता तो तीर्थंकरादि के अभाव में क्षायिक सम्यक्त्व क्यों नहीं होता ? निमित्त नहीं है इसलिये नहीं होता अर्थात् निमित्त ही बलवान है। इस प्रकार निमित्त की तर्क है। वह तर्क क्यों कर गलत है, वह आगे के दोहे में बताया जायेगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीर्थंकर केवली अथवा श्रुतकेवली के समिप ही सब जीवों को क्षायिक सम्यक्त्व होता है ऐसा एकान्त नहीं है. किसी जीव स्वयं श्रुतकेवली होकर स्वतः क्षायिक सम्यक्त्व प्रगट करतें है क्षायिक सम्यक्त्व निमित्त के बल से हुआ है या उपादान के बल से ? इसे समझने में निमित्त पक्षने जो भूल की है वह आगे बताई जायगी।

प्रथम एकवार सत् निमित्त के पास से स्वयं योग्य होकर श्रवण किया हो किंतु उस समय सम्यक्त्व प्राप्त न किया हो तो भी बादमें सत् निमित्त समीप न होने पर भी जीव स्वयं अंतरंग से जागृत होकर उपशम-क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है परंतु क्षायिक सम्यक्त्व तो निमित्त की उपस्थिति में ही होता है साक्षात् तीर्थंकर कीं सभा हो और तत्त्वों के गंभीर न्याय की एकधारा प्रवाहित हो रही हो उसे सुनने पर जीव को स्वभाव की परम महिमा प्राप्त होती है। अहाहा ! ऐसा परिपूर्ण ज्ञायक स्वरूपी भगवान मैं ! एक विकल्प का अंश भी मेरा स्वरूप नहीं है मैं स्वतंत्र स्वाधीन परिपूर्ण हूं। इस प्रकार अंतर से निज आत्म स्वभाव की अप्रतिहत प्रतीति जागृत होने पर जीव को क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त होता है वह तीर्थंकर केवली अथवा श्रुतकेवली निमित्त हैं इसलिये निमित्त यह कहता हैं कि आत्मा को क्षायिक सम्यक्त्व में निमित्त सहायक होना ही चाहिये, यह मेरा बल है।

इसके उत्तर में उपादान कहता हैं किः—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

केवलि अरु मुनिराज के पास रहे बहु लोय ।
पै जाको सुलटयो धनी क्षायिक ताकों होय ॥११॥

अर्थः—उपादान कहता है कि केवली और श्रुतकेवली भगवान के पास बहुत से लोग रहते हैं, किन्तु जिसका धनी [आत्मा] अनुकूल होता है उसी को क्षायिक सम्यक्त्व होता है ।

उपादान निमित्त से कहता है कि अरे ! सुन, सुन ! केवली भगवान और उस भव में मोक्ष जानवाले श्रुतकेवलियोंके निकट तो बहुत से लोग रहते हैं, बहुत से जीव साक्षात् तीर्थंकर के अति निकट जा आये, किन्तु उन सब को क्षायिक सम्यक्त नहीं हुआ । जिसका आत्मा स्वयं सुलटा हुआ वह स्वयं अपनी शक्ति से क्षायिक सम्यक्त पा गया, और जिसका आत्मा स्वयं सुलटा नहीं हुआ वह क्षायिक सम्यक्त नहीं पा सका । इससे सिद्धहुआ कि उपादान से ही क्षायिक सम्यक्त होता है, निमित्त से नहीं ।

जो जीव धर्म को समझते हैं वे अपने पुरुषार्थ से समझते हैं । त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर जिनके यहां जन्म लेते हैं वे माता पिता मोक्षाधिकारी होते ही हैं, तथापि वे अपने स्वतंत्र पुरुषार्थ से मोक्ष प्राप्त करते हैं । कुलके कारण अथवा तीर्थंकर भगवान के कारण मोक्ष नहीं पाते ।

तीर्थंकर भगवानकी सभा में तो बहुत से जीव अनेक वार गये, किन्तु जो स्वयं कुछ नहीं समझे वे कोरं कोर वापिस आगये । एक भी यथार्थ बात को अन्तरंग में नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बिठाया और जैसा गया था वैसा ही अज्ञानता से वापिस आगया। इतना ही नहीं, किन्तु कई जीव तो अपनी बिपरीत बुद्धि के कारण यह तर्क करते हैं कि जो यह कहते हैं क्या यही एक मार्ग है और जगत के समस्त मार्ग व्यर्थ हैं—गलत हैं?

भगवान की सभामें उपशम-क्षयोपशम सम्यक्ती जीव होते हैं, वे भी यदि दृढ पुरुषार्थ के द्वारा स्वयं क्षायिक सम्यक्त करें तब ही होता है। और बहुतेरे स्वयं नहीं करते इसलिये उन्हें नहीं होता। तात्पर्य यह है कि निमित्त का बल है ही नहीं। यदि निमित्त में कोई शक्ति होती तो जो भगवान के पास गये उन्हें क्षायिक सम्यक्त क्यों नही हुआ? समवसरण में जो जीव भगवान के पास जाते हैं वे सभी समझ ही जाते हों सो बात नहीं है, किन्तु जिसका धनी [आत्मा] समझकर सुलटा होता है उसे ऐसी आत्मप्रतीति प्रगट होती है कि जो फिर कभी पीछे नहीं हटती।

अहो! परम महिमावंत परिपूर्ण आत्मस्वभाव! इस स्वभाव का अवलोकन करते करते ही केवलज्ञान होता है-जो जीव सुलटा होकर ऐसी दृढ प्रतीति करता है उसी के होता है। किन्तु जो भगवान की वाणी को सुनकर भी सुलटा नहीं होता उसे सम्यक्त नहीं होता। इससे सिद्ध है कि निमित्त का कोई बल नहीं है। जिसके अपने पैरों में शक्ति नहीं है वह दूसरे के आधार पर कैसे खड़ा रह सकता है? इसी प्रकार अपनी आत्मा की शक्ति के विना-यथार्थ समझ के बिना साक्षात् भगवान के पास जाकर भी अपनी भीतर में विशेष

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वच्छंदी हुआ इसलिये सच्चा ज्ञान नहीं हुआ । इसलिये भगवान के पास जाने से क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता, किन्तु वह उपादान की जागृति से ही होता है ।

अब निमित्त प्रकारान्तर से कहता है—

हिंसादिक पापन किये जीव नर्क में जाहि ।
जो निमित्त नहिं कामको तो इम काहे कहाहिं ॥१२॥

अर्थः—निमित्त कहता है कि यदि निमित्त कार्यकारी न हो तो फिर यह क्यों कहा जाता है कि हिंसादिक पाप करने से जीव नरक में जाता है ?

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रहादि से जीव नरक में जाता है । इस में निमित्त का ही बल है । हिंसा में पर जीव का, झूठ में भाषा का, परिग्रह में परवस्तु का, चोरी में रुपया पैसा का और कुशील में शरीरादि निमित्त की जरूर पडती है या नहीं ? इस से स्पष्ट है कि निमित्त ही नरक में ले जाता है । परवस्तु के निमित्त से ही हिंसादि पाप होते हैं; केवल आत्मा से हिंसा चोरी आदि पाप कर्म नहीं हो सकते । इसलिये यदि निमित्त का बल न हो तो हिंसादि करने वाले नरक में जाते हैं, यह क्यों कर बनेगा ? परवस्तु ही उनके नरक का कारण होती है । इसलिये वहां निमित्त का बल है या नहीं, इस प्रकार निमित्त ने तर्क उपस्थित किया।

उसका समाधान करता हुआ उपादान कहता है:—

हिंसा में उपयोग जहां, रहे ब्रह्म के राच ।
तेई नर्क में जात हैं, मुनि नहिं जाहिं कदाच ॥१३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थः—हिंसादि में जिसका उपयोग (चैतन्य परिणाम) हो और जो आत्मा उसमें रचा पचा रहे वही नर्क में जाता है। भावमुनि कदापि नर्क में नहीं जाते।

पर जीव की हिंसा और जड का परिग्रह इत्यादि में जीव को यदि ममत्वरूप अशुभभाव होता है तो ही वह नर्क में जाता है। किसी पर वस्तु के कारण से अथवा पर जीव मर गया इस कारण से कोई जीव नरक में नहीं जाता, किंतु जिन जीवों का उपयोग अशुभ परिणामों में लीन हो रहा है वे ही नर्क में जाते हैं। पर जीव के मरने से अथवा राजपाट के अनेक संयोग मिलने से जीव नरक में नहीं जाता, किंतु मैंने राज किया, मैंने पर जीव को मारा, यह रुपया पैसा मेरा है इसप्रकार के ममत्व परिणाम से ही जीव नरक में जाता है। भावमुनि कभी भी नरक में नहीं जाते। कभी मुनि के पैर के नीचे कोई जीव आजाय और दबकर मर जाय तो भी सच्चे मुनि नरक में नहीं जाते, क्योंकि उनके विपरीतभाव-हिंसक-परिणाम नहीं हैं विपरीतभाववाला नरक में जाता है किंतु कोई निमित्तवाला नरक में नहीं जाता।

प्रश्न—आपने कहा कि निमित्तवाला नरक में नहीं जाता, तब बहुतसा रुपया पैसा इत्यादि परिग्रह रखने में कोई हानि तो नहीं है ?

उत्तर—निमित्त दोष का कारण नहीं है किंतु अपना ममत्वभाव अवश्य ही दोष का कारण है जो पैसा इत्यादि रखने का भाव हुआ वह कहीं बिना ममता के होता होगा ? ममता ही पापभाव है। बहुत रुपया पैसा से अथवा पर जीव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के मरने से आत्मा नरक में नहीं जाता किंतु पर जीव को मारने का हिंसक भाव और अधिक रुपया पैसा रखने का तीव्र ममत्व भाव ही जीव को नरक में ले जाता है । किसी के पास एक ही रुपया हो किंतु उसके ममत्व भाव अधिक हो तो वह नरक में जाता है और दूसरे के पास करोडें रुपयें की संपत्ति हो तथापि ममत्वभाव अल्प हो तो वह नरक में नहीं जाता अर्थात् निमित्त के संयोग पर आधार नहीं है किंतु उपादान के भावपर आधार है यदि ग्रहस्थ हिंसादिक तीव्र पाप–कषाय न करे तो नरक में नहीं जाता और अज्ञानी त्यागी भी यदि तीव्र कलुषित परिणाम करे तो वह नरक में जाता है ।

क्षायिक सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा चक्रवर्ती राजा हो और लडाई में हजारों मनुष्यों के संहार के बीच खडा हो तथा स्वयं भी बाण छोड रहा हो तथापि यदि उसके अंतरंग में यह प्रतीति है कि यह मेरा स्वरूप नहीं है, मैं पर जीव का कुछ भी करने में समर्थ नहीं हूं, मेरी अस्थिरता के कारण मुझे राग वृत्ति आजाती है वह भी मेरा स्वरूप नहीं है ऐसा भान होने से वह नरक में नहीं जाता इसलिये स्पष्ट है कि पर जीव की हिंसा नरक का कारण नहीं है किंतु अंतरंग का अशुभभाव ही नरक का कारण है ।

निमित्त ने बारहवे दोहे में यह तर्क उपस्थित किया था कि 'निमित्त से पाप होता है' किंतु अब वह यह तर्क उपस्थित करता है कि 'निमित्त से पुण्य होता है और जीव सुखी होता है' यथाः—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दया दान पूजा किये जीव सुखी जग होय
जो निमित्त झूठौ कहो यह क्यों माने लोय ॥१४॥

अर्थः—निमित्त कहता है कि दया, दान, पूजा करने से जीव जगत में सुखी होता है। यदि आपके कथनानुसार निमित्त झूठा हो तो लोग उसे क्यों मानेंगे ?

पर जीव की दया, द्रव्यादि का दान और भगवान की पूजा इत्यादि से जीव के पुण्य बंध होता है. इस प्रकार दया में पर जीव का निमित्त दान में द्रव्य का निमित्त और पूजा में भगवान का निमित्त है तथा इस पर निमित्त से जीव पुण्य को बांधकर जगत में सुखी होता है आप कहते हैं कि उपादान स्वतंत्र है और पुण्य से या पर वस्तु से सुख नहीं होता किंतु यह तो प्रत्यक्ष है कि दया इत्यादि से पुण्य करे तो अच्छी सामग्री मिलती है और जगत् में जीव सुखी होता है। यदि निमित्त से सुख न मिलता हो तो यह कैसे वने ? यह निमित्त पक्ष का तर्क है। इसमें तीन प्रकार से निमित्त का पक्ष स्थापित हुआ।

(१) पर निमित्त से पुण्य होता है (२) पुण्य करने से बाह्य वस्तु मिलती है (३) बाह्य वस्तु मिलने से जीव को सुख मिलता है। इस प्रकार समस्त *जगत् पुण्य के संयोगो में अपने को सुखी मानता है, इसलिये निमित्त का ही बल है।

* 'समस्तजगत' से जगत के सभी अज्ञानी जीव समझना चाहिये ! ज्ञानीजन जगत से परे हैं, वे अपने स्वभाव मे हैं। 'समस्तजगत' कहने पर यहां उनका समावेश नहीं होता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपादान पक्षने निमित्त पक्ष के अभी तक के समस्त तर्कों को जिस प्रकार खंडित किया है उसी प्रकार इस तर्क का भी खंडन करता हुआ कहता है कि:—

दया दान पूजा भली जगत माहिं सुख कार ।
जहं अनुभव को आचरण तहं यह बंधविचार ॥१५॥

अर्थ:—उपादान कहता है—दया, दान, पूजा इत्यादि भले ही जगत में बाह्य सहुलियत दें किन्तु जहां अनुभव के आचरण पर विचार करते हैं वहां यह सब (शुभभाव) बंध है [धर्म नहीं] ।

पर जीव की दया में राग को कम करने से, दान में तृष्णा को कम करने से और पूजा भक्ति में शुभराग करने से जो पुण्य बंध होता है वह जगत् में संसार के विकारी सुख का कारण है किन्तु वास्तव में तो वह दुःख ही है सच्चे सुख के स्वरूप को जानने वाले सम्यग्ज्ञानी उस पुण्य को और उसके फल को सुख नहीं मानते । उस पुण्य भावसे रहित अपने शुद्ध पवित्र आत्मा का अनुभव ही सच्चा सुख है, पुण्य भाव से तो आत्मा को बंध होता है, इसलिये वह दुःख ही है और उसका फल दुःख का ही निमित्त है, पुण्य तो आत्मा के गुण को रोकता है और जड का संयोग कराता है, उसमें आत्मा के गुण का लाभ नहीं होता । यदि यथार्थ समझ के द्वारा आत्मा को पहिचान कर उसका अनुभव करे तो परम सुख और सच्चा लाभ हो, इसमें पुण्य और निमित्त [पुण्य का फल] इन दोनों से सुख होता है, यह बात उडा दी गई है। पुण्य के फल के रूप में बाह्य में जो कुछ संयोग मिलता है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसे अज्ञानी जीव सुख मानता है किन्तु बाह्य सामग्री से और जडमें आत्मा का लाभ अथवा सुख किंचित् मात्र भी नहीं है।

निमित्त ने कहा था कि पुण्य से जीव सुखी होता है, यहां उपादान कहता है कि किसी भी प्रकार का जो पुण्य परिणाम होता है वह आत्मा को बांधता है, आत्मा के अविकारी धर्म को रोकता है। इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिये कि अशुभ से बचने के लिये शुभभाव न किये जांय किन्तु यह समझना चाहिये कि वह पुण्य परिणाम आत्म धर्म में-सुख में सहायक नहीं है। आत्मा की पहिचान करने से ही धर्म होता है किन्तु अधिकाधिक पुण्य करने से वह आत्मा के धर्म के लिये निमितरूप सुख होगा यह कदापि नहीं हो सकता। उपादान स्वरूप आत्मा का ही बल है निमित्त का नहीं।

देखो तो इस बाल बच्चों वाले ग्रहस्थ ने संवत् १७५०में उपादान निमित्त के स्वरूप को कितना स्पष्ट किया था। सभी पहलुओं से तर्क उपस्थित किये हैं। जैसे किसी का किसी के साथ कोई झगडा पडा हो तो वह उसके विरोध में तर्क करके दावा दायर करता है और नीचे की अदालत में असफल होने पर हाइ कोर्ट में जाता है और वहां पर भी असफल होने पर प्रिवी कौंसिल में अपील करता है और इस प्रकार तमाम शक्य प्रयत्न करता है उसी प्रकार यहांपर निमित्त भी नये नये तर्क उपस्थित करता है, उलट पुलट कर जितनी बन सकती हैं वे सब दलीलें रखता है किन्तु उसका एक भी उपादान तर्क

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के सामने नहीं टिक सकता। उपादान की तो एक ही बात है कि आत्मा अपने उपादान से स्वतंत्र है, आत्मा की सच्ची श्रद्धा ज्ञान और स्थिरता ही कल्याण का उपाय है, दूसराकोई उपाय नहीं है। अंतमें निमित्त और उपादान दोनों की युक्तियों को भलीभांति जान कर सम्यग्ज्ञानरूपी न्यायाधीश अपना यथार्थ निर्णय देगा, जिसमें उपादान की जीत और निमित्त की हार होगी।

अभी तक निमित्तने अपने को उपादान के सामने बलवान सिद्ध करने के लिये अनेक प्रकार के तर्क उपस्थित किये और उपादानने न्याय के बल से उसके सभी तर्कों का खंडन कर दिया है। अब निमित्त नये प्रकार का तर्क उपस्थित करता है।

यह तो बात प्रसिद्ध है सोच देख उर मांहि।
नरदेही के निमित्त विन जिय क्यों मुक्ति न जांहि॥१६॥

अर्थः—निमित्त कहता है कि यह बात तो प्रसिद्ध है कि नरदेह के निमित्त के बिना जीव मुक्तिको प्राप्त नहीं होता इसलिये हे उपादान! तू इस संबंध में अपने अंतरंग में विचार कर देख।

निमित्तः—दूसरी सब बातें तो ठीक हैं किंतु मुक्ति में नरदेह का निमित है या नहीं? मनुष्य शरीर लगेठा तो है ही, यह लगेठा तो होना ही चाहिये।

उपादानः—अकेले के लिये लगेठा कौन? नागा बाबा को लगेठा का क्या काम? नंगेको कौन लूटने वाला है? नागा बाबा को लगेठा नहीं होता। इसी प्रकार आत्मा समस्त पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रव्य के परिग्रह से रहित अकेला स्वाधीन है। मोक्षमार्ग में उसे कोई लूटने वाला नहीं है। आत्मा अपनी शक्ति से परिपूर्ण है, उसे किसी अन्य लगेठा की आवश्यकता नहीं है। मनुष्य शरीर जड है, वह मुक्ति का लगेठा नहीं हो सकता।

मनुष्य भव से ही मुक्ति होती है अन्य तीन गतियों (देव, तिर्यंच, नरक) से मुक्ति नहीं होती, इसलिये निमित्त ऐसा तर्क करता है जैसे मानों मनुष्य देह आत्मा को मुक्त करा देता है। वह कहता है कि—सारी दुनिया का अभिप्राय लो तो इस पक्ष में अधिक मत मिलेंगे कि मनुष्य देह के विना मुक्ति नहीं होती, इसलिये मनुष्य देह से ही मुक्ति होती है और यह बात तो जग प्रसिद्ध है. इसलिये हे उपादान इसे तू अपने अंतरंग में विचार देख। क्या कहीं देव अथवा नरकादि भव से मुक्ति होती है ? कदापि नहीं। इसलिये मनुष्य शरीर ही मुक्ति में कुछ सहायक है। भाई ! आत्मा को मुक्त होने में किसी न किसी वस्तु की सहायता की आवश्यकता पडती ही है। सौ हलवाले को भी एक हलवाले की किसी समय आवश्यकता हो जाती है इसलिये आत्मा को मुक्ति के लिये निश्चयतः इस मानव देह की सहायता आवश्यक है।

इस प्रकार बेचारा निमित्त अपना सारा बल एकत्रित करके तर्क करता है किन्तु उपादान का एक नकार उसे खंडित कर देता हैं, उपादान कहता है कि—

देह पींजरा जीव को रोकै शिवपुर जात।
उपादान की शक्ति सों मुक्ति होत रे भ्रात ॥१७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थः—उपादान निमित्त से कहता है कि हे भाई! देहरूपी पिंजरा तो जीवको शिवपुर (मोक्ष) जाने से रोकता है किन्तु उपादान की शक्ति से मोक्ष होता है।

नोटः—यहां पर जो यह कहा है कि देहरूपी पिंजडा जीव को मोक्ष जाने से रोकता है सो यह व्यवहार कथन है। जीव शरीर पर लक्ष्य करके अपनेपन की पकड से स्वयं विकार मे रुक जाता है तब शरीर का पिंजडा जीवको रोकता है, यह उपचार से कथन है।

हे निमित्त! तू कहता है कि मनुष्य देह जीवको मोक्ष के लिये सहायक है किंतु भाई, देह का लक्ष्य तो जीव को मोक्ष जाने से रोकता है क्योंकि शरीर के लक्ष्य से तो राग ही होता है और राग जीव की मुक्ति को रोकता है इसलिये देहरूपी पिंजडा जीव को तो शिवपुर जाने से रोकने में निमित्त है।

ज्ञानी पुरुष सातवें–छठे गुणस्थान में आत्मानुभव में झूलता हो तब वहां छठे गुणस्थान पर संयम के हेतु से शरीर निर्वाह के लिये आहारकी शुभ इच्छा होती है सो वह भी मुनि के केवलज्ञान और मोक्ष को रोकती है, इसलिये हे निमित्त! शरीर आत्मा की मुक्ति में सहायक होता है, तेरी यह बात बिल्कुल गलत है।

और फिर यह मनुष्य शरीर कहीं पहली बार नहीं मिला है। ऐसे शरीर तो अनंत वार प्राप्त हो चुके हैं तथापि जीव मुक्त क्यों नहीं हुआ। स्वयं अपने स्वाधीन आनंद स्वरूप को नहीं जाना तथा जैसा सर्वज्ञ भगवानने कहा है उसे नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समझा और पराश्रय में ही अटका रहा इसीलिये मुक्ति नहीं हुई। केवलज्ञान और मुक्ति आत्मा के स्वाश्रयभाव से उत्पन्न हुई अवस्था है वे शरीर की हड्डियों में से अथवा इंद्रियों में से उत्पन्न नहीं होते!

ज्ञानी और अज्ञानी की मूल दृष्टि में ही अंतर है अज्ञानी की दृष्टि आत्मस्वभाव पर नहीं है अर्थात् वह स्वाधीन शक्ति को (उपादान को) नही जानता इसलिये वह पराश्रित दृष्टि के कारण संयोग में सर्वत्र निमित्त को ही देखता है और इसी की शक्ति को मानता है। ज्ञानी की दृष्टि अपने आत्मस्वभाव पर है उसे उपादान की स्वाधीन शक्ति की खबर है इसलिये वह जानता है कि जहां अपना स्वभाव साधन होता है वहां निमित्त अवश्य अनुकूल होता है किन्तु निमित्त पर ज्ञानी की दृष्टि नहीं है, जोर नहीं है। यदि मानव देह धर्म का कारण होता तो मनुष्य देह अनंतवार मिल चुका है तब जीव कभी का धर्मको पा गया होता किन्तु यह जीव इससे पहले धर्म को कभी नहीं प्राप्त हुआ, क्योंकि यदि उसने पहले धर्मको पाया होता तो अभी इस प्रकार संसार में न होता इसलिये मनुष्य शरीर जीवको धर्म प्राप्त करने में किंचित् मात्र भी सहायक नहीं है।

प्रश्नः—हमें तो धर्म करना है उसमें इतना अधिक समझने का क्या काम है और फिर इतना सब समझकर हमें क्या करना है?

उत्तरः—हे भाई! स्व कौन और पर कौन है इसका निर्णय किये बिना धर्म कहां करेगा? उपादान और निमित्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोनों स्वतंत्र भिन्न २ वस्तुऐं हैं यह समझकर, पर वस्तु आत्मा के लिये हानि लाभ का कारण है यह मिथ्या मान्यता दूर कर देनी चाहिये। आत्मा ही स्वयं अपना हानि लाभ करता है ऐसी स्वाधीन दृष्टि होने पर असंयोगी आत्मस्वभाव की सच्ची पहिचान होती है, वही धर्म है और वही आत्म कल्याण है। इस बात को समझे विना जीव चाहे जो करे किन्तु उसका कल्याण नहीं होता। १७.

अब निमित्त यह तर्क उपस्थित करता है कि निमित्त के विना जीव का मोक्ष रुका हुआ है:—

उपादान सब जीव पै रोकन हारौ कौन ।
जाते क्यों नहिं मुक्ति में विन निमित्त के हौंन ॥१८॥

अर्थः—निमित्त कहता है कि उपादान तो सब जीवों के है तब फिर उन्हें रोकनेवाला कौन है? वे मोक्ष में क्यों नहीं चले जाते? स्पष्ट है कि निमित्त के न होने से ऐसा नहीं होता।

"निमित्त कहता है कि हे उपादान! यदि उपादान की शक्ति से ही सब काम होते हों तो उपादान तो सभी जीवों में विद्यमान है। सभी जीवों में सिद्ध होने की शक्ति मौजूद है तब फिर सभी जीव मुक्त क्यों नहीं हो जाते उन्हें मोक्षमें जाने से कौन रोकता है? सच तो यह है कि जीवों को अच्छा निमित्त नहीं मिलता इसलिये वे मोक्ष नहीं जा पाते। मनुष्य भव, आर्यक्षेत्र, उत्तम कुल, पंचेन्द्रियो की पूर्णता, निरोग शरीर और साक्षात् भगवान की उपस्थिति यह सब सानुकूल निमित्त मिल जाय तो जीव को धर्म प्राप्त हो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आंखों से भगवान के दर्शन और शास्त्रों का पठन होता है इसलिये आंख धर्म में सहायक हुई न? और कान हैं तो उपदेश सुना जाता है। यदि कान न हों तो क्या उपदेश सुन सकेंगे? तात्पर्य यह है कि कान भी धर्म में सहायक हैं। इस प्रकार यदि इन्द्रियादिक की सामग्री ठीक हो तो जीव की मुक्ति हो। एकेन्द्रिय जीव के भी उपादान तो है तब फिर वह मोक्ष में क्यों नहीं जाता? उसके इंद्रियादिक सामग्री ठीक नहीं है इसलिये मुक्ति को प्राप्त नहीं कर सकता, इससे सिद्ध हुआ कि निमित्त ही बलवान है।" १८.

निमित्त का तर्क तो देखो, मात्र संयोग के तरफ की ही बात ली है, कहीं भी आत्मा का तो कार्य लिया ही नहीं है। किन्तु अब उपादान उसका उत्तर देता हुआ मात्र आत्मा की तरफ से कहता है कि भले ही सब कुछ हो किन्तु आत्मा स्वयं जागृत न हो तो उसकी मुक्ति नहीं होती:—

उपादान सु अनादिको उलट रह्यौ जगमाहिं;
सुलटत ही सूधे चलें सिद्धलोक को जांहि ॥१९॥

अर्थ:—उपादान कहता है कि जगत् में अनादि काल से उपादान उलटा हो रहा है, उसके सुल्टे होते सच्चा ज्ञान और सच्चा चारित्र प्रगट होता है और उससे वह सिद्ध लोक को जाता है-मोक्ष पाता है।

अरे निमित्त! यह सच है कि उपादान तो सभी आत्माओंमें अनादि काल से है परंतु वह उपादान अपने विपरीत भाव से संसार में अटक रहा है किसी निमित्त ने उसे नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रोका। निगोददशामें जीव धर्मको नहीं पा सकता वहां भी वा अपने ही विपरीत भाव के कारण ज्ञान शक्ति को हार बैठा है। यह बात नहीं है कि 'इन्द्रियां नहीं हैं इसलिये ज्ञान नहीं है किंतु 'अपने में ही ज्ञान शक्ति का हननकर चुका है इसलिये निमित्त भी नहीं है' इस प्रकार उपादान की ओर से कहा गया है। अच्छे कान और अच्छी आंखें मिलने से क्या होता है ? कानों में उपदेश के शब्द आने पर भी यदि उपादान जागृत नहीं है तो धर्म नहीं समझा जा सकता। इसी प्रकार अच्छी आंखें हों और शास्त्रों के शब्द भलीभांति पढे जांय किन्तु यदि उपादान अपनी ज्ञान शक्ति से न समझे तो उसके धर्म नहीं होता। आंखों से और शास्त्र से यदि धर्म होता हो तो बडी बडी आंखोंवाले भैंसे के सामने पोथा रखकर तो देखिये इतना अच्छा निमित्त मिलने पर भी वह समझता क्यों नहीं। सच तो यह है कि उपादान में ही शक्ति नहीं है इसलिये नहीं समझता ! कर्म इत्यादि का किसी का जोर आत्मा पर नहीं है। अनादि काल से उपादान के होने पर भी आत्मा स्वयं अभान दशा में अपने विपरीत पुरुषार्थ से अटक रहा है। जब वह आत्मप्रतीति करके सीधा होता है तब वह मुक्ति प्राप्त करता हैं। निमित्त के अभाव से मुक्ति का अभाव नहीं है किन्तु उपादान की जागृति के अभाव से मुक्ति का अभाव है।

निमित्त कहता है कि एक काम में बहुतों की आवश्यकता होती है। उपादान कहता है कि भले ही यह सब कुछ हो किन्तु एक उपादान न हो तो कोई भी कार्य नहीं हो सकता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निमित्त:—मात्र आटे से रोटी बन सकती है ? चकला, बेलन, तवा, अग्नि और बनाने वाला यह सब हो तो रोटी बनती है किन्तु यदि इन की सहाय न हो तो अकेला आटा पडा पडा क्या करेगा ? क्या मात्र आटा से रोटी बन जायगी ? कदापि नहीं। तात्पर्य यह है कि निमित्त बलवान है, उसकी सहायता अनिवार्य है।

उपादान:—चकला, बेलन, तवा, अग्नि और बनाने वाला इत्यादि सब मौजूद हों किन्तु यदि आटे की जगह रेत हो तो क्या रोटी बन जायगी ? कदापि नहीं। क्योंकि उस उपादान में उस प्रकार की शक्ति नहीं है। एक मात्र आटा न होने से रोटी नहीं बनती और आटे में रोटी के रूप में परिणत होने की जिस समय योग्यतारूप उपादान शक्ति है तिस समय वहां अनुकूल निमित्त उपस्थित होते ही हैं किन्तु रोटी स्वयं आटे में से ही होती है कार्य तो मात्र उपादान से ही होता है। आत्मा में मात्र पुरुषार्थ से ही कार्य होता है। मनुष्य भव, आर्यक्षेत्र, उत्तम कूल, पंचेन्द्रियों की पूर्णता, निरोग शरीर और साक्षात् भगवान की उपस्थिति इत्यादि किसी से भी जीव को लाभ नहीं होता, यह सब निमित्त तो जीव को अनंतवार मिल चुके तथापि उपादान स्वयं सुलटा नहीं हुआ इसलिये किंचित मात्र भी लाभ नहीं हुआ। यदि स्वयं सुलटा पुरुषार्थ करे तो आत्मा की परमात्म दशा स्वयं अपने में से प्रगट करता है। उस में उसके लिये कोई निमित्त सहायक नहीं हो सकते इसमें कितना पुरुषार्थ आया। उपादान ने एक आत्मस्वभाव को छोडकर जगत की समस्त पर वस्तु-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ओंकी दृष्टि को अपंग बना दिया है। मुझे अपने आत्मा के अतिरिक्त विश्व की किसी भी वस्तु से हानि या लाभ नहीं है, कोई भी वस्तु मुझे राग नहीं कराती, मेरे स्वभाव में राग है ही नहीं ऐसी श्रद्धा होते ही दृष्टि में न तो राग रहता है और न पर का अथवा राग का आधार ही रहता है। हां, आधार स्वभाव का रह गया इसलिये राग निराधार-अपंग हो गया। अल्पकाल में ही वह नष्ट हो जायगा और वीतरागता प्रगट हो जायगी। ऐसा अपूर्व पुरुषार्थ इस सच्ची समझ में आता है।

आंख कान इत्यादि किसी जीव के अच्छे होने पर भी अज्ञान से तीव्र राग करके कोई जीव सातवें नरक में जाता है तब वहां आंख कान क्या कर सकते हैं। श्री गजसुकुमार मुनि के आंख कान जल गये थे तथापि भीतर उपादान के जागृत हो उठने से उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया था, इस में निमित्त ने क्या किया? एक द्रव्य दूसरे द्रव्य की अवस्था को रोके या मदद करे यह बात सत्य के जगत् में [अनंत ज्ञानियों के ज्ञान में और वस्तु के स्वभाव में] नहीं है। असत्य जगत् [अनंत अज्ञानी] वैसा मानता है इसलिये वह संसार में दुःखी होकर परिभ्रमण करता है।

जीव एकेन्द्रिय से सीधा मनुष्य हो सकता है सो कैसे? एकेन्द्रिय दशा में तो स्पर्शेन्द्रिय के सिवाय कोई इन्द्रिय अथवा मन की सामग्री नहीं है तथापि आत्मा में वीर्यगुण है, उस वीर्य गुण के बल पर भीतर शुभभाव करता है जिससे वह मनुष्य होता है कर्म का बल कम होने से शुभभाव हुआ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह बात गलत है। पर वस्तु से कोई पुण्य पाप होता ही नहीं है। जीव स्वयं ही मंद विपरीत वीर्य से शुभाशुभभाव करता है, यदि उपादान स्वयं सुलटा होकर समझे तो स्वयं मुक्तिको प्राप्त होता है, विपरीत होने पर स्वयं ही फंसा रहता है, कोई दूसरा उसे नहीं रोकता।

जब स्वतंत्र उपादान जागृत होता है तब निमित्त अनुकूल ही होता है। स्वभाव की प्रतीति पूर्वक पूर्णता का पुरुषार्थ करते हुये साधक दशा में राग के कारण उच्च पुण्य का बंध हो जाय और उस पुण्य के फल में बाहर धर्म की पूर्णता के निमित्त मिलें परंतु जागृत हुआ साधक जीव उस पुण्य के आश्रय में न रुक कर स्वभाव में आगे बढता पुरुषार्थ की पूर्णता करके मोक्ष को प्राप्त करता है। उपादान मोक्ष प्राप्त करता है तब बाह्य निमित्त ज्यों के त्यों पडे रह जाते हैं, वे कहीं उपादान के साथ नहीं जाते। इस प्रकार पुरुषार्थ की पूर्णता करके मोक्ष होता है।

जीव अनादि काल से विपरीत समझा है वह खोटे देव, शास्त्र, गुरु के कारण नहीं किंतु अपने असमझरूप भाव के कारण ही उलटा समझकर परिभ्रमण कर रहा है। इसी प्रकार जीव यथार्थ समझ स्वयं ही करता है। कान से, आंख से अथवा देव-गुरु-शास्त्र से जीव के सच्ची समझ नहीं होती। यदि कान इत्यादि से ज्ञान होता हो तो जिसे वे निमित्त मिलते हैं उन सब को एक साथ ज्ञान हो जाना चाहिये किंतु ऐसा होता नहीं है, इसलिये मोक्ष और संसार, ज्ञान और अज्ञान अथवा सुख और दुःख यह सब उपादान से ही होता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। इस प्रकार जीव को लाभ हानि में किसी भी पर का किंचित् मात्र कारण नहीं है। यों दृढतापूर्वक सिद्ध करके निमित्त का "कुछ प्रभाव पडता है" इस मिथ्या मान्यता रूप अज्ञान को संपूर्ण रीत्या समाप्त कर दिया है। १९.

अब निमित्त नया तर्क उपस्थित करता है:—

कहुं अनादि विन निमित्त ही उलट रह्यौ उपयोग;
अैसी बात न संभवै उपादान तुम जोग ॥२०॥

अर्थ:—निमित्त कहता है कि क्या अनादि से विना निमित्त के ही उपयोग (ज्ञान का व्यापार) उलटा हो रहा है। हे उपादान! तुम्हारे लिये ऐसी बात तो संभव नहीं है।

उपादान ने १९ वें दोहे में कहा था कि उपादान अनादि से उलटा होरहा है उसे लक्ष्य में लेकर निमित्त यह तर्क करता है कि हे उपादान! तुझमें अनादि से जो विकार भाव हो रहा है क्या वह विना निमित्त ही होता है। यदि पर निमित्त के विना मात्र आत्मा से ही विकार होता हो तो वह आत्मा का स्वभाव हो हो जायगा और तब सिद्ध भगवान के भी विकार होना चाहिये परंतु विकारी भाव अन्य निमित्त के विना नहीं होता क्योंकि वह आत्मा का स्वभाव नहीं है। यदि विना निमित्त के होने लगे तो विकार स्वभाव होजाय किंतु विकार में निमित्त तो होता ही है इसलिये निमित्त का जोर हुआ या नहीं।

विपरीतभाव अकेले स्वभाव में से आया या उसमें कोई निमित्त था? क्या अकेली चूडी बज सकती है? अकेली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चूडी नहीं बज सकती; किंतु साथ में दूसरी चूडी के होनेपर ही बज सकती है। यदि सामने चंद्रमा न हो तो आंख में उंगली लगाने से दो चंद्रमा न दिखाई दें, क्योंकि सामने दूसरी चीज है इसीलिये विकार होता है। इसीप्रकार आत्मा के विकार में दूसरी वस्तु की आवश्यकता होती है। उपादान और निमित्त दोनों के एकत्रित होने पर विकार होता है। आत्मा जब विकार करता है तब वह पर के लक्ष्य से करता है या आत्मा के लक्ष्य से? मात्र आत्मा के लक्ष्य से विकार होने की योग्यता ही नहीं है, इसलिये विकार होने में मैं (निमित्त) भी कुछ करता हूं।

ध्यान रखिये यह तो सब निमित्त के तर्क हैं। ऊपर से बलवान् लगतो तर्क भीतर से बिल्कुल ढीला है, उसकी तो नींव ही कमजोर है। उपादान के सामने यह एक भी तर्क नहीं टिक सकती। २०

उपादान का उत्तर:—

उपादान कहे रे निमित्त हम पै कही न जाय।
ऐसे ही जिन केवली देखे त्रिभुवन राय ॥२०॥

अर्थः— उपादान कहता है कि हे निमित्त! मुझ से नहीं कहा जा सकता। जिनेन्द्र केवली भगवान त्रिभुवनराय ने ऐसा ही देखा है।

नोट—यहां पर उपादान के कहने का आशय यह है कि जब जीव विकार करता है तब उसका लक्ष्य दूसरी वस्तु पर होता है उस दूसरी वस्तु को निमित्त कहा जाता है किंतु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिनेन्द्रभगवान देखते हैं कि निमित्त की असर के विना ही उपादान का उपयोग अपने ही कारण से विपरीत हुआ है, इसलिये तू जैसा कहता है वैसा मुझ से नहीं कहा जा सकता

अरे निमित्त! आत्मा अपने विपरीत भाव से जब रागद्वेष करता है तब दूसरी वस्तु जो उपस्थित है इस का इनकार कैसे किया जा सकता है। जीव विकार करता है तब दूसरी वस्तु निमित्त रूप में उपस्थित होती है यह ठीक है किंतु उस निमित्त को लेकर आत्मा विकार करता है यह बात ठीक नहीं है। भले ही विकार आत्मा के स्वभाव में से नहीं आता, किंतु विकार की उत्पत्ति तो आत्मा की ही अवस्था में से होती है कहीं निमित्त की अवस्था में से नहीं होती। दो चूडियां एकत्रित होकर बजती हैं किन्तु वे एक दूसरे के कारण नहीं बजती, लेकिन प्रत्येक चूडी अपनी ही शक्ति से बजती है। दो लकडियां एकत्रित होती हैं तो वे चूडियों की तरह नहीं बजती क्योंकि उनमें उस तरह की उपादान शक्ति नहीं है। कभी दो चूडियां टक्कर लगने से टूट भी जाती हैं तब वे वैसी क्यों नहीं बजती? उनमें वैसी आवाज होने की उपादान शक्ति नहीं है किन्तु टूट ने रूप योग्यता है इसलिये वैसा होता है। दूसरे चंद्रमा है इसलिये आंख को उंगली से दबाने पर दो चंद्रमा दिखाई देते हैं यह बात भी ठीक नहीं है। यदि चंद्रमा के कारण ऐसा होता हो तो जो जो चंद्रमा को देखते हैं उन सब को दो चंद्रमा दिखाई देने चाहिये किन्तु ऐसा नहीं होता, क्योंकि उसमें चंद्रमा का कारण नहीं है। एक देखने वाले को चंद्रमा एक ही स्पष्ट दिखाई देता है और दूसरे देखने वाले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को दो चंद्रमा दिखाई देते हैं। यहां देखने वाले की दृष्टि में कुछ अंतर है। जो देखनेवाला अपनी आंख में उंगली गढाकर देखता है उसे दो चंद्रमा दिखाई देते हैं, दूसरे को नहीं दिखाई देते। उससे सिद्ध हुआ कि निमित्त के अनुसार कार्य नहीं होता, किंतु उपादान कारण की शक्ति के अनुसार कार्य होता है, इसीप्रकार जब जीव स्वरूप को भूलकर विपरीत दृष्टि से विकार करता है तब वह उसे स्वयं ही करता है, कोई पर नहीं कराता। सामने निमित्त तो एक का एक ही है तथापि उपादान की योग्यता के कारण परिणाम में अंतर होता है।

इसका दृष्टांत इस प्रकार है-कोई एक सुंदर मरी हुई वेश्या मार्ग में पडी हुई थी, उसे साधु, चोर, विषयासक्त पुरुष और कुत्ते ने देखा। उनमें से साधु ने विचार किया कि अरे ऐसा मनुष्यभव पाकर भी आत्मा को पहिचाने विना यह मर गई। चोर ने विचार किया कि यदि कोई यहां न हो तो इसके शरीर पर से गहने उतार लूं, विषयासक्त पुरुषने यह विचार उत्पन्न किया कि यदि यह जीवित होती तो इसके साथ भोग भोगता, और कुत्ते ने ऐसा विचार किया कि यदि यहां से सब लोग चले जांय तो मैं इसके शरीर के मांसको खाऊ।

अब देखिये, यहां पर सब के लिये एकसा ही निमित्त है तथापि प्रत्येक की उपादान की स्वतंत्रता के कारण विचार में कितना अंतर होगया। यदि निमित्त का असर होता हो तो सब के विचार एक समान होना चाहिये, किन्तु ऐसा नहीं हुआ, इस से सिद्ध है कि उपादान की स्वाधीनता से ही कार्य होता है। जीव स्वयं ही पापराग पुण्यराग या पुण्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाप रहित शुद्ध वीतराग भाव में से जैसा भाव करना चाहे वैसा भाव कर सकता है।

यह तो समझी जा सकने योग्य धर्म की बात है, प्रथम दशा में समझने के लिये साधारण बात है। सम्यग्दर्शन अर्थात् स्वतंत्र परिपूर्ण आत्मस्वभाव की पहचान को प्रगट करने के पूर्व वस्तु का यथार्थ निर्णय करने के लिये यह प्रथम भूमिका है। कल्याण के लिये यह अपूर्व समझ है। यह मात्र शब्दों की बाते नहीं हैं किन्तु यह तो केवलज्ञान की प्राप्ति की बारह-खडी की प्रथम भूमि मात्र है। इसलिये इसे रुचिपूर्वक ठीक समझना चाहिये।

अज्ञानी कहता है—कर्म के निमित्त के विना आत्मा के विकार नहीं होता, इसलिये कर्म ही विकार करता है। ज्ञानी कहता है—आत्मा स्वयं जितना विकार करता है तब उतना अंश कर्म को निमित्त कहा जाता है लेकिन वह कर्म आत्मा को विकार नहीं कराता। कोई हजारों गालियां दे तो वह क्रोध का कारण नहीं है किंतु जीव यदि क्षमा को छोडकर क्रोध करे तो गाली को क्रोध का निमित्त कहा जाता है। जीव यदि अपने भाव में क्षमा को सुरक्षित रखें तो हजारों या करोडों गालियों के होने पर भी उसे निमित्त नहीं कहा जा सकता। उपादान के भावानुसार सामने की वस्तु में निमित्तपन का आरोप आता है किंतु सामने की वस्तु के कारण उपादान का भाव हो यह कदापि नहीं होता। उपादान जब स्वाधीनता पूर्वक अपना कार्य करता है तब दूसरी वस्तु मात्र निमित्तरूप उपस्थित होती है ऐसा सर्वज्ञदेवने देखा है, तब हे निमित्त ! मैं उससे इनकार कैसे कर सकता हूं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहां उपादान यह कहना चाहता है कि जगत् की दूसरी वस्तुएं उपस्थित हैं, उन्हें अपने ज्ञान में जानता तो हूं, दूसरी वस्तु को जानने में कोई हर्ज नहीं है किन्तु दूसरी वस्तु मुझ में कुछ कर सकती है.यह बात मुझे मान्य नहीं है। जगतमें अनंत पर द्रव्य हैं वे सब सदा स्वतंत्र भिन्न २ हैं, यदि यों न माने तो ज्ञान असत् है और यदि यह मानें कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ कर सकता है तो भी ज्ञान असत् ही है। जीव तीव्र राग द्वेष करता है और उसके निमित्त से जो कर्म बंधते हैं उन कर्मों का जब उदय आता है तब जीव को तीव्र राग द्वेष करना ही होता है–यह बात बिल्कुल गलत है और जीव की स्वाधीनता की हत्या करनेवाली है। जब जीव रागद्वेष करता है तब कर्म का निमित्त तो होता है किंतु कर्म जीव के रागद्वेष नहीं कराते। जीव द्रव्य अथवा पुद्गल द्रव्य दोनों अपनी पर्याय में स्वतंत्र हैं और अपनी अपनी अविकारी अथवा विकारी अवस्था को स्वयं ही स्वतंत्रतया करते हैं। कोई एक दूसरे का कर्ता नहीं है, इस प्रकार स्वतंत्र वस्तु स्वभाव की पहचान करना सो यही प्रथम धर्म है।

आत्मा के गुण के लिये पर वस्तु की सहायता की आवश्यकता है, पर वस्तु आत्मा के गुण या दोष उत्पन्न करती है यह मान्यता ठीक नहीं है यह बात इस संवाद में सिद्ध की गई है। यदि पर वस्तु आत्मा में दोष उत्पन्न करती है तो पर वस्तु तो हमेशा रहती है इसलिये दोष भी स्थायी हो जायगें और वे कभी दूर नहीं हो सकेंगे और यदि गुण के लिये आत्मा को पर वस्तु की आवश्यकता हो तो गुण पराधीन हो जायगें, परंतु गुण भी स्वाधीन स्वभाव है, इसलिये आत्मा के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुण-दोषों को पर वस्तुएं उत्पन्न नहीं कर सकती। जब जीव स्वयं अपना कार्य करता है तब वह निश्चय (उपादान) है और अन्य वस्तु की उपस्थिति व्यवहार (निमित्त) है। यह दोनों हैं अवश्य किंतु अन्य वस्तु उसमें गुण-दोष उत्पन्न करने के लिये समर्थ नहीं हैं।

पैसा हो तो पुण्य उत्पन्न हो और शरीर अच्छा हो तो धर्म हो यह दोनों मान्यताएं बिल्कुल मिथ्या हैं। इसी प्रकार देव, गुरु, शास्त्र की उपस्थिति जीव को धर्म प्राप्त कराती है यह बात भी मिथ्या है। यदि जीव स्वयं समझे तो धर्म प्राप्त करे और जब स्वयं धर्म को प्राप्त करता है तब विनय के लिये यह कहा जाता है कि सद्गुरुने धर्म समझाया, यह व्यवहार हैं किंतु वास्तव में कोई किसी को धर्म समझाने के लिये समर्थ नहीं है। इस प्रकार के निश्चय की यदि प्रतीति हो तो इस व्यवहार का कथन सच्चा कहा जा सकता है ऐसा न हो तो व्यवहार असत् है ही।

निमित्त का तर्क था कि हे उपादान तेरी यह सब बात तो ठीक है किंतु तेरी आत्मा में जो दोष होता है वह दोष क्या तेरे स्वभाव में से आता है? कदापि नहीं। दोष के लिये अन्य वस्तु की उपस्थिति आवश्यक है, इसलिये मैं कहता हूं कि निमित्त के बल से ही दोष होते हैं।

उपादानने इसके उत्तर में कहा कि हे निमित्त! जब उपादान अपना कार्य करता है तब निमित्त की उपस्थिति होती है यों श्री सर्वज्ञ भगवान ने देखा है तब मैं उससे इनकार कैसे कर सकता हूं, परंतु अन्य उपस्थित वस्तु आत्मा को बिल्कुल विकार नहीं कराती।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"यदि मात्र उपादान से ही कार्य हो सकता हो तो क्या विना कर्म के ही आत्मा में अवगुण होते हैं? विना कर्म के दोष नहीं होते इसलिये कर्म का बल ही आत्मा में रागादि उत्पन्न कराते हैं।" इसप्रकार अज्ञानी जन उपादान को पराधीन मानते हैं। उपादान की स्वाधीनताको प्रगट करते हुये ज्ञानी कहते हैं कि जीव स्वयं समझे तो वह मुक्तिको प्राप्त करता है, उसे कर्म नहीं रोक सकते और जीव स्वयं दोष करता है तो कर्म इत्यादि अन्य वस्तुको निमित्त कहा जाता है परंतु कर्म जबर्दस्ती से आत्मा को विकार नहीं कराते इसप्रकार पर वस्तु की निमित्तरूप उपस्थिति है, इतना ज्ञानमें स्वीकार किया किंतु वह उपादान के लिये किंचित् मात्र भी कुछ करता है इस बात को बिल्कुल जड से ही समाप्त कर दिया है। २१

अब निमित्त कुछ ढीला होकर उपादान और निमित्त दोनों को एक समान [५० प्रतिशत कहने के लिये उपादान को समझाता है—

जो देख्यो भगवान ने सो ही सांचो आहिं।
हम तुम संग अनादि के बली कहोगे कांहि ॥२२॥

अर्थः—निमित्त कहता है कि भगवानने जो देखा है वही सच है मेरा और तेरा अनादिकालीन संबंध है इसलिये हम दो में से बलवान् किसे कहा जाय? अर्थात् कम से कम यह तो कहो हम दोनों समान हैं। सम कक्ष है।

निमित्त—हे उपादान! भगवान श्री जिनेन्द्र देव ने हम दोनों को (उपादान निमित्त तथा निश्चय-व्यवहार को) देखा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है तब भगवानने जो देखा है वह सत्य है। हम दोनों अनादि काल से एक साथ रह रहे हैं इसलिये कोई बलवान नहीं है-हम दोनों समान हैं, कम से कम इतना तो कहो।

उपादान—नहीं, नहीं। निमित्ताधीन परावलंबी दृष्टि से (व्यवहारनय का आश्रय से) तो जीव अनादिकाल से परिभ्रमण कर रहा है। संसार के अधर्म-स्त्री, धन इत्यादि के निमित्त से होते हैं और धर्म देव, गुरु, शास्त्र के निमित्त से होते हैं इस प्रकार की सर्वत्र पराधीन निमित्तदृष्टि से ही मिथ्यात्व है और उसी का फल है संसार।

निमित्त—भगवान ने एक कार्य में दो कारण देखे हैं, उपादान कारण और निमित्त कारण। इसलिये कर्म में उपादान और निमित्त दोनों के ५०—५० प्रतिशत रखिये। स्त्री का निमित्त हो तो विकार होता है और गाली देने वाला हो तो क्रोध होता है इसलिये ५० प्रतिशत निमित्त कराता है और ५० प्रतिशत उपादान करता है, इस प्रकार दोनों के एकत्रित होने से कार्य होता है, यह सीधा हिसाब है।

उपादान—गलत, बिल्कुल गलत। यह ५०—५० प्रतिशत का सीधा हिसाब नहीं किन्तु दो और दो=तीन (२+२=३) जैसी स्पष्ट भूल है। यदि स्त्री अथवा गाली ५० प्रतिशत विकार उत्पन्न करती हो तो केवली सर्वज्ञ के भी विकार होना चाहिये किंतु कोई भी निमित्त एक प्रतिशत भी किसीको भी विकार कराने में समर्थ नहीं है। जब जीव स्वयं शत प्रतिशत स्वतः विकार करता है तब पर वस्तु की उपस्थिति को निमित्त कहा जाता है इस समझ में ही स्पष्ट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिसाब है कि प्रत्येक द्रव्य भिन्न रहें और स्वतंत्रतया अपनी अपनी अवस्थाओं के कर्ता होनेसे कोई द्रव्य किसी दूसरे का कुछ भी नहीं कर सकता।

इस दोहे में निमित्त की प्रार्थना है कि, अपन दोनों समकक्षी रहें। अनादिकाल से जीव के साथ कर्म चिपके हुये हैं और वे जीव के विकार में निमित्त हो रहे हैं। निमित्तरूप कर्म अनादिकाल से हैं इसलिये उन्हें जीव के साथ समकक्षी तो रखिये। २२.

अब उपादान ऐसा उत्तर देता है कि:—निमित्तरूप जो कर्म के परमाणु हैं वे तो बदलते ही जाते हैं और मैं उपादान स्वरूप आत्मा वैसा का वैसा त्रिकाल रहता हूं इसलिये मैं ही बलवान हूं:—

उपादान कहे वह बली जाको नाश न होय।
जो उपजत विनशत रहे बली कहा ते सोय ॥२३॥

अर्थ:—उपादान कहता है—जिसका नाश नहीं होता वह बलवान है, जो उत्पन्न होता है और जिसको विनाश होता है वह बलवान कैसे हो सकता है?

नोट—उपादान स्वयं सदा कार्यरूप परिणत होनेवाली अखंड एकरूप वस्तु है इसलिये उसका नाश नहीं होता, निमित्त तो संयोग रूप है, आता है और जाता है इसलिये वह नाश रूप है अतः उपादान ही बलवान है।

जीव स्वयं अज्ञान भाव से भले अनादिकाल से नया नया रागद्वेष किया करे तथापि निमित्त कर्म अनादि से एकसे नहीं रहते, वे तो बदलते ही रहते हैं। पुराने निमित्त कर्म खिर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाते हैं और नये बंधते हैं तथा उनका समय पूरा होने पर वे भी खिर जाते हैं। जीव यदि नया रागद्वेष करता है तो उन कर्मों को निमित्त कहा जाता है, इसप्रकार उपादान स्वरूप आत्मा तो अनादिकाल से वैसा का वैसा ही रहता है और कर्म बदलते रहते हैं इसलिये मैं ही (उपादान ही) बलवान् हूं। अपने गुणों को प्रगट करने की शक्ति भी मुझमें ही है। सच्चे देव, शास्त्र, गुरु भी प्रथक् प्रथक् बदलते जाते हैं और उनकी सच्ची वाणी भी बदलती जाती है [भाषा के शब्द सदा एकसे नहीं रहते] परंतु सच्चे देव, शास्त्र, गुरु और उनकी वाणी का ज्ञान करते समय मेरा अपना ही ज्ञान ज्ञानसे काम करते हैं। मैं आत्मा त्रिकाल हूं और गुण अथवा दोष के निमित्त सब बदलते ही जाते हैं। कर्मों के परमाणु भी बदलते जाते हैं तब फिर कर्म बडे हैं या मैं? अज्ञानियों की यह महा मिथ्यात्वरूप भयंकर भूल है कि वे ऐसा मानते हैं कि कर्म आत्मा के पुरुषार्थ को रोकते हैं। आत्मा के पुरुषार्थ को पराधीन माननेवाले महामिथ्यात्वरूप सबसे बडे दोष को अपने ऊपर ले लेते हैं। वीतराग शासन में परम सत्य वस्तु, स्वरूप से प्रगट है कि, आत्मा के भाव में कर्म की शक्ति बिल्कुल नहीं है मात्र आत्मा का ही बल है। आत्मा संपूर्ण स्वाधीन है। अपनी स्वाधीनता से अपने चाहे जैसे भाव कर सकता है, आत्मा स्वयं जिस समय जैसा पुरुषार्थ करता है, तब वैसा ही पुरुषार्थ हो सकता है, इस प्रकार की आत्म स्वाधीनता की समझ ही मिथ्यात्व के सबसे बडे दोष को नाश करने का एक मात्र उपाय है!

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अरे भाई ! तू आत्मा स्वतंत्र वस्तु है, तेरे भाव से तुझे हानि लाभ है, कोई पर वस्तु तुझे हानि लाभ नहीं करती। जीव यदि इस प्रकार की यथार्थ प्रतीति करे तो वह स्वलक्ष्य से मुक्ति को प्राप्त करे, परंतु यदि जीव अपने भाव को न पहचाने और यही मानता रहे कि पर निमित्त से निजको हानि लाभ होता हैं तो उसका, पर लक्ष्व कदापि नहीं छूट सकता ओर स्व की पहचान भी कभी नहीं हो सकती, इसलिये वह संसार में चक्कर लगाया करता है। अतः उपादान और निमित्त इन दोनां के स्वरूप को पहचान कर यह निश्चय करना चाहिये कि उपादान और निमित्त दोनों प्रथक् प्रथक् पदार्थ हैं, कभी कोई एक दूसरे का कार्य नहीं करते। इस प्रकार निश्चय करके निमित्त के लक्ष्य को छोडकर अपने उपादान स्वरूप को लक्ष्य में लेकर स्थिर होना ही सुखी होने का—मोक्ष का उपाय है। २३

निमित्त का तर्क—

उपादान तुम जोर हो तो क्यों लेत अहार;
पर निमित्त के योग सों जीवत सब संसार ॥२४॥

अर्थः—निमित्त कहता है—हे उपादान ! यदि तेरा बल हो तो तू अहार क्यों लेता है ? संसार के सभी जीव पर निमित्त के योग से जीते हैं।

हे उपादान ! इन कर्म इत्यादि को जाने दीजिये। यह तो दृष्टि से दिखाई देते नहीं, किन्तु यह तो स्पष्ट दिखाई देता है कि आहार के निमित्त से तू जी रहा है। यदि तेरी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शक्ति हो तो तू आहार क्यों लेता है ? बिना आहार के अकेला क्यों नहीं जीता ? अरे ! छठे गुणस्थान तक मुनिराज भी आहार लेते हैं तब आहार के निमित्त की तुझे आवश्यकता हुई या नहीं ? सारा संसार आहार के ही निमित्त से जी रहा है। क्या आहार के निमित्त के बिना मात्र उपादान पर जिया जा सकता है ? सच तो यह है कि निमित्त ही बलवान है।

इस प्रकार निमित्त पक्ष का वकील तर्क करता है, जो वकील होता है वह अपने ही मवक्किल की ओर से तर्क उपस्थित करता है, वह अपने विरोधी पक्ष के सच्चे तर्क को जानता हुआ भी कभी उस तर्क पेश नहीं करता। यदि वह विरोधी पक्ष के और के तर्क को उपस्थित करे तो वह वकील कैसे कहलायेगा। यहां निमित्त का वकील कहता है कि निमित्त की भी कुछ दहाइयां हैं, मात्र उपादान ही काम नहीं करता, इसलिये निमित्त की शक्ति का आधार भी स्वीकार करो। २४.

उपादान का उत्तर—

जो अहार के जोग सों जीवत है जगमांहि ।
तो वासी संसार के मरते कोऊ नांहि ॥२५॥

अर्थः—उपादान कहता है कि यदि आहार के योग सों जगत के जीव जीते हों तो संसारवासी कोई भी जीव नहीं मरता।

हे निमित्त ! आहार के कारण जीवन नहीं टिकता। यदि जगत् के जीवों का जीवन आहार से टिकता हो तो इस जगत् में किसी जीव को मरना ही नहीं चाहिये किन्तु खाते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खाते भी जगत् के अनेक जीव मरते देखे गये हैं, इस से सिद्ध है कि आहार जीवन का कारण नहीं है, सब अपनी अपनी आयु से जीते हैं जब तक आयु होती है तब तक जीता है और आयु के न होनेपर चक्रवर्ती, वासुदेव के लिये बनाये गये 'सिंह केशरिया लड्डु' खाने पर भी मर जाता है। जहां आयु समाप्त हुई वहां आहार क्या करेगा? आठों पहर खान पान और आराम से शरीर की चाकरी करने पर भी जीव क्यों मर जाते हैं? आहार के निमित्त को लेकर उपादान नहीं टिकता। एक वस्तु में दूसरी वस्तु के कारण कुछ भी नहीं होता इसलिये हे निमित्त! तेरी बात गलत है। भोजन करने के लिये बैठा हो, भोजन करके पेट भर लिया हो, हाथ में ग्रास मौजूद हो फिर भी शरीर छूट जाता है। यदि आहार से शरीर टिकता हो तो खाने वाला कोई नहीं मरना चाहिये और सभी उपवासी मर जाना चाहिये, परंतु आहार करनेवाले भी मरते हैं और विना आहार के भी पवन-भक्षी वर्षों तक जीते रहते हैं, इसलिये आहार के साथ जीवन मरण का कोई संबंध नहीं है। आहार का संयोग उन पर-माणु के कारण से आते है और शरीर के परमाणु शरीर के कारण टिकते हैं। आहार और शरीर दोनों के परमाणु भिन्न हैं। आहार की तरह दवा के कारण भी शरीर नहीं टिकता और न दवा के कारण रोग ही दूर होता है। हजारों आदमी औषधियां लाते हैं खाते हैं किन्तु रोग नहीं मिटता और दवा के विना भी रोग मिट जाता है, यह तो स्वतंत्र द्रव्य की स्वतंत्र अवस्थायें हैं एक वस्तु के कारण दूसरी वस्तु में कार्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो, यह बात पवित्र जैनदर्शन को मान्य नहीं है क्योंकि, वस्तु स्थिति ही वैसी नहीं है। जिसे ऐसा विपरीत विश्वास है कि एक द्रव्य के कारण दूसरे द्रव्य का कार्य होता है वे महा अज्ञानी हैं उसे वस्तुस्थिति की खबर नहीं है, वह जैनधर्म को नहीं जानता। २५.

अब निमित्त तर्क उपस्थित करता है:—

सूर सोम मणि अग्नि के निमित्त लखें ये नैन।
अंधकार में कित गयो उपादान दृग दैन ॥२६॥

अर्थ:—निमित्त कहता है—सूर्य, चंद्रमा, मणि अथवा अग्नि का निमित्त हो तो आंख देख सकती है यदि उपादान देखने का काम कर सकता हो तो अंधकार मे उसको देखने की शक्ति कहां चली जाती है (अंधकार में आंख से क्यों नहीं दिखाई देता)।

तू सर्वत्र 'मैं-मैं' करता है और यह कहता है कि सब कुछ मेरी (उपादान की) शक्ति से ही होता है परंतु हे उपादान! तू देखने का काम तो सूर्य, चंद्र, मणि अथवा दीपक के निमित्त से ही कर सकता है। यदि तेरे ज्ञान से ही जानना होता हो तो अंधेरे में तेरा ज्ञान कहां चला जाता है? दीपक इत्यादि के निमित्त के विना तू अंधेरे में क्यों नहीं देख सकता? और फिर विना पुस्तक के तुझे ज्ञान क्यों नहीं होता? क्या विना शास्त्र के मात्र ज्ञान में से ज्ञान होता है? देखो यदि सामने समयसार शास्त्र न रख दिया जाय तो क्या इसके विना ज्ञान होता है? यदि ज्ञान से ही ज्ञान होता हो तो सामने शास्त्र क्यों रखते हो? तात्पर्य यह है कि सर्वत्र मेरा ही बल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। तू अपने 'अहं'-को छोड और यह स्वीकार कर कि मेरी भी शक्ति है। ऐसा निमित्त का तर्क है २६.

उपादान का उत्तर—

सूर सोम मणि अग्नि जो, करे अनेक प्रकाश।
नैन शक्ति बिन ना लखैं, अंधकार सम भास ॥२७॥

अर्थः—उपादान कहता है कि सूर्य, चंद्रमा, मणि और दीपक अनेक प्रकार का प्रकाश करते हैं तथापि देखने की शक्ति के विना कुछ भी नहीं दिखाई देता, सब अंधकार सा भासित होता है।

अरे भाई! किसी पर वस्तु के द्वारा ज्ञान नहीं हो सकता। ज्ञान का प्रकाश करनेवाला तो ज्ञान स्वरूपी आत्मा है और प्रकाश इत्यादि का प्रकाशक भी आत्मा ही है। सूर्य इत्यादि से ज्ञान प्रकाशित नहीं होता अर्थात् पर निमित्त से आत्मा ज्ञान नहीं करते। हे निमित्त! यदि सूर्य, चंद्रमा या दीपक से दिखाई देता हो तो अंधे के पास उन सबको रखकर उस में देखने की शक्ति आजानी चाहिये किन्तु सूर्य इत्यादि सब कुछ होने पर भी अंधे को क्यों नहीं दिखाई देता। उपादान में ही जानने की शक्ति नहीं है इसलिये वह नहीं जान सकता। यदि उपादान में जानने की शक्ति हो तो (बिल्ली इत्यादिक) अंधेरे में भी देख सकते हैं। जहां प्राणी की आंख ही जानने की शक्ति से युक्त है, वहां उसे कोई अंधेरा नहीं रोक सकता। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान इत्यादि आत्मा के गुणों का चैतन्य प्रकाश किसी संयोग से प्रगट नहीं होता किन्तु आत्मस्वभाव से ही वह प्रगट होता है। जहां आत्मा स्वयं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुरुषार्थ के द्वारा सम्यग्दर्शनादि रूप परिणमन करता है वहां उसे कोई निमित्त रोकनेवाला अथवा सहायक नहीं है। तात्पर्य यह है कि निमित्त का दूसरों पर कोई बल नहीं है।

इसी प्रकार शास्त्र की सहायता से भी ज्ञान नहीं होता। समयसार शास्त्र हजारों आदमियों के पास एकसा ही होता है। यदि शास्त्र से ज्ञान होता हो तो उन सब को एकसा ही ज्ञान होना चाहिये परंतु ऐसा नहीं होता। एक ही शास्त्र के होने पर भी कोई सीधा अर्थ समझकर मिथ्यात्वका नाश करता है और कोई विपरीत अर्थ करके उलटा मिथ्यात्व को पुष्ट करता है ऐसी स्थिति में शास्त्र क्या करेगा? समझ तो अपने ज्ञान में से ही निकाली जाती है। किसी शास्त्र में से ज्ञान नही हो सकता। मैं अपने ज्ञान के द्वारा अपने स्वतंत्र आत्मस्वभाव की पहिचान करूं तो मुझे धर्म का लाभ हो सकता है, किसी संयोग से लाभ मानते वे अज्ञानी हैं।

अहाहा? देखो तो उपादान स्वभाव की कितनी शक्ति हैं। कहीं भी किंचित्मात्र भी पराधीनता नहीं पुषाती। ऐसे उपादान स्वरूप को पहचानकर उसका जो आश्रय करता है वह अल्प काल में ही मुक्ति को प्राप्त कर लेता है! जीवोंने अनादि काल से अपनी शक्ति की पहचान ही नहीं की, इसलिये पर की आवश्यक्ता को मान बैठे हैं इसीलिये पराधीन होकर दुःखी हो रहे हैं, यह जिस प्रकार कहा जाता है उसीप्रकार अपने को स्वाधीन रूप मे सर्वप्रथम पहचानना चाहिये, यही मुक्ति का मार्ग है। २७.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब निमित्त तर्क उपस्थित करता है:—

कहै निमित्त वे जीव को मो बिन जगके माहिं,
सबै हमारे वश परे हम बिन मुक्ति न जाहिं ॥२८॥

अर्थः—निमित्त कहता है कि मेरे विना जगतमें मात्र जीव क्या कर सकता है? सभी मेरे वश में हैं, मेरे विना जीव मोक्ष भी नहीं जा सकता।

विना निमित्त के जीव मुक्ति को नहीं पाता। पहले मनुष्य शरीर का निमित्त, फिर देव, शास्त्र, गुरु का निमित्त, फिर मुनि दशा में महाव्रतादि का शुभ राग का निमित्त इस प्रकार समस्त निमित्त की परंपरा के विना, जीव मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। क्या बीच में व्रतादि का पुण्य आये विना कोई जीव मुक्त हो सकता है? कदापि नहीं। इससे सिद्ध है कि पुण्य निमित्त है और उसी के बल से जीव मुक्ति प्राप्त करता है। यह है निमित्त का तर्क। २८.

उपादान का उत्तर

उपादान कहै रे निमित्त! ऐसे बोल न बोल,
तोको तज निज भजत हैं ते ही करें किलोल ॥२९॥

अर्थः—उपादान कहता है कि हे निमित्त! ऐसी बात मत कर। तेरे ऊपर की दृष्टि को छोडकर जो जीव अपना भजन करता है वही किलोल (आनंद) करता है।

हे निमित्त! तेरे प्रताप से जीव मुक्ति को पाता है, इस व्यर्थ बात को रहने दे, क्योंकि शरीर, देव-शास्त्र-गुरु अथवा पंचाणुव्रत इन सब निमितों के लक्ष्य से तो जीव को राग ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होता है और उसे संसार में परिभ्रमण करना होता है किंतु जब इन सब निमित्तों के लक्ष्य को छोडकर और पंचमहाव्रतों के विकल्प को भी छोडकर, अपने अखंडानंदी आत्मस्वभाव की भावना करके, सम्यग्दर्शन ज्ञान पूर्वक जो अंतरंग में स्थिरता करता है वही जीव मुक्ति को पाता है और वही परमानंद को भोगता है। निमित्त के लक्ष्य से आनंदानुभव नहीं हो सकता। जो निमित्त की दृष्टि में रुक जाते हैं वे मुक्ति को नहीं पाते। इसप्रकार निमित्त के बलवान होने का तर्क खंडित होगया। २९.

निमित्त कहता है—

कहै निमित्त हमको तजैं ते कैसे शिव जात,
पंच महाव्रत प्रगट है और हु क्रिया विख्यात ॥३०॥

अर्थः—निमित्त कहता है कि मुझे छोडकर कोई मोक्ष कैसे जा सकता है? पंच महाव्रत तो प्रगट हैं ही और दूसरी क्रियाएं भी प्रसिद्ध हैं जिन्हें लोग मोक्ष का कारण मानते हैं।

शास्त्रों में तो निमित्त के पक्ष में शास्त्रों के पृष्ठ के पृष्ठ भरे पडे हैं तब फिर आप निमित्त की सहायता से इनकार कैसे करते हैं? पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति इत्यादि का शास्त्रों में विशद् वर्णन है। क्या उनको धारण किये विना जीव मोक्ष को जा सकता है? मुझे छोडकर जीव मोक्ष जा ही नहीं सकता। अहिंसादि पंच महाव्रत में पर का लक्ष्य करना होता है या नहीं?

पंच महाव्रत में पर लक्ष्य को लेकर जो राग का विकल्प उठता है उसे आगे रखकर निमित्त कहता है कि क्या पंच

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महाव्रत के राग के बिना मुक्ति होती है ? बात यह है कि पंच महाव्रत के शुभराग से मुक्ति को माननेवाले अज्ञानी बहुत हैं इसलिये निमित्त ने यह तर्क उपस्थित किया है। तर्क तो सभी रखे ही जाते हैं। यदि ऐसे विपरीत तर्क न हों तो जीव का संसार कैसे बना रहे ? यह सब निमित्ताधीन के तर्क संसार को बनाये रखने के लिये ठीक हैं अर्थात् निमित्ताधीन दृष्टि से ही संसार टिका हुआ है। यदि निमित्ताधीन दृष्टि को छोडकर स्वभावदृष्टि करे तो संसार नहीं टिक सकता। ३०.

उपादान का उत्तर—

पंच महाव्रत जोग त्रय और सकल व्यवहार,
पर कौ निमित्त खपाय के तब पहुंचे भवपार ॥३१॥

अर्थः—उपादान कहता है पंच महाव्रत, तीन योग (मन, वचन, काय) की ओर का जोडाण और समस्त व्यवहार तथा पर निमित्त का लक्ष को दूर करके ही जीव भव से पार होता है।

ज्ञानमूर्ति आत्मा का जितना पर लक्ष्य होता है वह सब विकार भाव है भले ही पंच महाव्रत हों, किंतु वे भी विकार हैं। वह विकारभाव तथा अन्य जो जो व्यवहारभाव हैं वे सब राग को और निमित्त को स्वलक्ष्य द्वारा जीव जब छोड देते हैं तब ही वह मोक्ष को पाता है। पुण्य-पापरहित आत्मस्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता के द्वारा ही मुक्ति होती है, उसमें कहीं भी राग नहीं होता। पंच महाव्रत आस्रव है, विकार है; वह आत्मा का यथार्थ चारित्र नहीं है। जो उसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारित्र का यथार्थ स्वरूप मानता है वह मिथ्यादृष्टि है। आत्मा का चारित्र धर्म उससे परे है। जगत के अज्ञानी जीवों को यह अति कठिन लग सकता है किंतु वही परम सत्य, महा हितकारी है।

प्रश्न—पंच महाव्रत चारित्र भले न हो किंतु वह धर्म तो है या नहीं ?

उत्तर—पंच महाव्रत न तो चारित्र है और न धर्म ही। सर्वप्रकार के राग से रहित मात्र ज्ञायक स्वभावी आत्मा की सम्यक् प्रतीति करने के बाद ही विशेष स्वरूप की स्थिरता करने से पूर्व पंच महाव्रत के शुभ विकार का भाव मुनिदशा में आजाता है किंतु वह विकल्प है, राग है, विकार है, धर्म नहीं है। क्योंकि वे भाव आत्मा के शुद्धचारित्र और केवलज्ञान को रोकते हैं। आत्मा के गुण को रोकनेवाले भावो में जो धर्म मानता है वह आत्मा के पवित्र गुणों का घोर अनादर कर रहा है उसे आत्म प्रतीति नहीं है।

आत्मप्रतीति युक्त सातवें छठे गुणस्थान में आत्मानुभव में झूलते हुये मुनि के पंच महाव्रत का जो विकल्प छठे गुणस्थान में होता है वह राग है, आस्रव है। वह आत्मा के केवलज्ञान में विघ्न करता है। निमित्त ने कहा था कि यह मोक्ष में मदद् करता है; किंतु उपादान कहता हैं कि वह मोक्ष में बाधक है। इन विकल्पों को तोडकर जीव जब स्वरूप स्थिरता की श्रेणी मांडता है तब मोक्ष होता है; किंतु पंच महाव्रतादि को रखकर कभी भी मोक्ष नहीं होता इसलिये हे निमित्त! तेरे द्वारा उपादान का एक भी कार्य नहीं होता। ३१.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निमित्त कहता है—

कहै निमित्त जगमैं वड्यौ मोतें बडौ न कोय,
तीनलोक के नाथ सब मो प्रसाद तें होय ॥३२॥

अर्थः—निमित्त कहता है कि जगत् में मैं बडा हूँ, मुझ से बडा कोई नहीं है, तीन लोक का नाथ भी मेरी कृपा से होता है।

नोट—सम्यग्दर्शन की भूमिका में ज्ञानी जीव के शुभ विकल्प आनेपर तीर्थंकर नामकर्म का बंध होता है, इस दृष्टांत को उपस्थित करके निमित्त अपनी बलवता को प्रगट करना चाहता है।

आत्मस्वभाव से अजान और राग का पक्ष करनेवाला कहता है कि भले सम्यग्दृष्टि जीव शुभराग का आदर नहीं करते, उसे अपना नहीं मानते, तथापि त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर का जो पद है वह तो मेरी ही (निमित्त की) कृपा से मिलता है। अर्थात् निमित्त की ओर लक्ष्य किये विना तीर्थंकर गोत्र नहीं बंधता, अतः त्रिलोकीनाथ तीर्थंकरदेव भी मेरे ही कारण तीर्थंकर होते हैं। यह निमित्त पक्ष का तर्क है। किंतु इस में भारी भूल है। निमित्त की कृपा से [पर लक्ष्यी राग से] तो जड परमाणुओं का बंध होता है, उन से कहीं तीर्थंकर पद प्रगट नहीं होता। तीर्थंकर पद तो आत्मा की वीतराग दशा से प्रगट होता है। निमित्ताधीन पराश्रित दृष्टिवाला मानता है कि तीर्थंकर गोत्र के पुण्य परमाणुओं का बंध होने से कोई बडप्पन है। इस प्रकार वह पुद्गल की धूली से आत्मा का बडप्पन बतलाता है परंतु निमित्त की ओर के जिस भाव से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीर्थंकर गोत्र के जड़ परमाणुओं का बंध होता है वह भाव बडा है या उपादान की ओर के जिस भाव से उस राग को दूर करके पूर्ण वीतरागता और केवलज्ञान दशा प्रगट होती है वह भाव बडा है ?

इतना ध्यान रखना चाहिये कि तीर्थंकर गोत्र के परमाणुओं का जो बंध होता है वह राग भाव से होता है, परंतु वीतरागता और केवलज्ञान कहीं उस तीर्थंकर गोत्र बंध के राग भाव से नहीं होता परंतु उस रागभाव को दूर करके स्वभाव की स्थिरता से ही त्रिलोकपूज्य अरहंत पद प्रगट होता है, इसलिये राग बडा नहीं है किंतु राग को दूर करके पूर्ण पदको प्राप्त करके स्वरूप को प्रगट करना ही महान् पद है । ३२.

उपादान का उत्तर—

उपादान कहैं तू कहा चहुंगति में ले जाय;
तो प्रसाद तें जीव सब दुःखी होहिंरे भाय ॥३३॥

अर्थः—उपादान कहता है अरे निमित्त ! तू कौन ? तू तो जीव को चारों गतियों में ले जाता है । भाई, तेरी कृपा से सभी जीव दुःखी ही होते हैं ।

निमित्त यह कहता था कि मेरी कृपा से जीव त्रिलोकीनाथ होता है उसके विरोध में उपादान कहता है कि तेरी कृपा से तो जीव संसार की चारों गतियों में परिभ्रमण करता है । जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र का बंध होता है वह भाव भी संसार का कारण है । इसे ध्यान देकर बराबर समझिये । यह तनिक कठिन सी बात है, जिस भाव से तीर्थंकर प्रकृति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का बंध होता है वह भाव विकार है, संसार है। क्योंकि जिस भाव से नया बंध हुआ उस राग के कारण जीव को नया भव ग्रहण करना पडता है इसलिये निमित्त की कृपा से (राग से) जीव चार गतियों में परिभ्रमण करता है। राग का फल है संसार। यद्यपि तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो, इस प्रकार का आत्म प्रतीति युक्त राग सम्यग्दृष्टि के ही हो सकता है तथापि वह तीर्थंकर नामकर्म के बंध के राग से खुश नहीं होते, प्रत्युत उसे हानि कर्ता ही मानते हैं। जिस भाव से तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है उस भाव से तीर्थंकर पद प्रगट नहीं होता; किंतु उस भाव के नाश से केवलज्ञान और तीर्थंकर पद प्रगट होता है।

निमित्तने राग की ओर से तर्क उपस्थित किया था और उपादान स्वभाव की ओर से तर्क उपस्थित करता है। सम्यग्ज्ञान के द्वारा इस प्रकार स्पष्टीकरण किया गया है कि निमित्त को लक्ष्य करके होने वाला तीर्थंकर प्रकृति का राग भाव भव भ्रमण [संसार] का कारण है और उपादान स्वरूप के लक्ष्य से स्थिरता का होना मोक्ष का कारण है। निमित्त के लक्ष्य से होने वाला भाव उपादान स्वरूप की स्थिरता को रोकने वाला है। किसी भी प्रकार का रागभाव संसार का ही कारण है फिर चाहे वह राग तिर्यंच पर्याय का हो अथवा तीर्थंकर प्रकृति का हो। देखो श्रेणिक राजा को आत्म प्रतीति थी तथापि वे राग में अटक रहे थे इसलिये तीर्थंकर प्रकृति का बंध होने पर भी उन्हें दो भव धारण करना पडेंगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रश्न—दो भव ग्रहण करना पड़ें यह भले ही अच्छा न हो किंतु जिस भव में तीर्थंकर प्रकृति का बंध करता है यदि उसी भव से मोक्ष प्राप्त करे तो जिस भाव से तीर्थंकर प्रकृति का बंध हुआ वह भाव अच्छा है या नहीं ?

उत्तर—सिद्धांत में अंतर नहीं पड़ता ? ऊपर कहा गया है कि 'किसी भी प्रकार का राग भाव हो वह संसार का ही कारण है' भले ही कोई जीव जिस भव से तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध करता है उसी भव से मोक्ष जाय तथापि जिस भाव से तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है वह राग भाव ही है और वह राग भाव केवलज्ञान और मोक्ष को रोकने वाला है। जब उस राग को दूर किया जाता है तब केवलज्ञानी तीर्थंकर होता है।

प्रश्न—भले ही तीर्थंकर प्रकृति का राग बुरा हो किंतु जिस जीवने तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया है उस जीव को केवलज्ञान अवश्य होता ही है। तीर्थंकर प्रकृति का बंध करने से इतना तो निश्चय हो ही जाता है कि वह जीव केवलज्ञान और मोक्ष को अवश्य प्राप्त करेगा, इसलिये निमित्त का इतना बल तो मानोगे या नहीं ?

उत्तर—अरे भाई ! केवलज्ञान और मोक्ष दशा आत्मा के सम्यग्दर्शनादि गुणों से होती है या जिस भाव से तीर्थंकर प्रकृति का बंध हुआ उस राग भाव से होती है ? राग भाव से मोक्ष का होना निश्चित नहीं है किंतु जिस जीव के सम्यग्दर्शन का अटूट बल है उसको लेकर वह अल्प काल में ही मुक्ति प्राप्त करेगा यह निश्चित ही है जो राग से धर्म मानता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है और राग से केवलज्ञान का होना मानता है वह तीर्थंकर प्रकृति तो नहीं बांधता किंतु तिर्यंच प्रकृति को बांधता है क्योंकि उसकी मान्यता में राग के प्रति आदर हैं, इसलिये वह वीतराग स्वभाव का अनादर करता हुआ अपनी ज्ञानशक्ति को हार कर अपनी हल्की गति में चला जायगा।

और फिर यह भी एक समझने योग्य न्याय है कि जिस कारण से तीर्थंकर प्रकृति का बंध हुआ था उस कारण को दूर किये बिना वह प्रकृति फल भी नहीं देती। जिस तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है वह तब तक फल नहीं देती जब तक जिस राग भाव से तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया था उस से विरूद्ध भाव के द्वारा उस राग भाव का सर्वथा क्षय करके केवलज्ञान प्रगट किया जाता और वह फल भी आत्मा को नहीं मिलता किंतु बाह्य में समवशरणादि की रचना के रूप में प्रगट होता है। इस प्रकार जिस भाव से तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया था वह भाव तो केवलज्ञान के होने पर छूट ही जाता है, वह भाव केवलज्ञान में क्या सहायता कर सकता है? इसलिये हे निमित्त, तेरी उपरोक्त दृष्टि से जीव तीन लोक का नाथ तो नही होता किंतु अज्ञान भाव से वह तीनलोक में परिभ्रमण करता है। तात्पर्य यह है कि तू जीव को चार गतियों में ले जाता है।

उपादानदृष्टि—इसका अर्थ है स्वाधीन स्वभाव की स्वीकृति। मैं परिपूर्ण स्वरूप हूं, अपने पवित्र दशा रूपी कार्य को विना किसी की सहायता के मैं ही अपनी शक्ति से करता हूं, इस प्रकार अपने स्वभाव की श्रद्धा का जो बल है सो उपादानदृष्टि है और वह मुक्ति का उपाय है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निमित्तदृष्टिः—इस का अर्थ है अपने स्वभाव को भूलकर पर द्रव्यानुसारी भाव का होना। स्वाधीन आत्मा के लक्ष्य को भूलकर जो भाव होते है वे सब भाव पराश्रित हैं और वह पराश्रित भाव संसार के कारण हैं। साक्षात् तीर्थंकर के लक्ष्य से जो भाव होते हैं वे भाव भी दुःखरूप और संसार के ही कारण हैं। पुण्य का राग भी पर लक्ष्य से ही होता है इसलिये वह दुःख और संसार का ही कारण है अतः पराधीन दुःखरूप होने से निमित्तदृष्टि त्यागने योग्य है और स्वाधीन-सुखरूप होने से उपादान स्वभाव दृष्टि ही अंगीकार करने योग्य है।

अरे भाई! यह तो श्री भगवान के पास से आये हुये हीरे शाण पर चढते हैं। यदि किसी भी न्याय को विपरीत बात को पकड रखे तो संसार होता हैं और यदि यथार्थ संधि करके बराबर समझे तो मुक्ति होती हे। अहा, यह बात तो वीतराग भगवान ही करते हैं। वीतराग के सेवक भी तो वीतराग ही हैं। वीतराग और वीतराग के सेवकों के अतिरिक्त इस बात करने के लिये कोई समर्थ नहीं है।

त्रैकालिक स्वभाव होने पर भी यह आत्मा अनादि काल से क्यों परिभ्रमण कर रहा है? बात यह है कि जीवने अनादि काल से अपनी भूल को नहीं पहचाना। बंध-मुक्त स्वयं अपने भाव से ही होता है तथापि पर के कारण से अपने को बंधन-मुक्त मानता है। अनादि काल की यह महा विपरीत शल्य रह गई है कि पुण्य से और निमित्तों से लाभ होता है परन्तु भाई! आत्मा में अनादि काल से किस प्रकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की भूल है और वह किस कारण से है यह जानकर उसे दूर किये बिना नहीं चल सकता। जीव यह मानता है कि पुण्य अच्छा है और पाप खराब; किन्तु मेरा स्वभाव अच्छा और सब विभाव खराब है इस प्रकार स्वभाव-परभाव के बीच के भेद को वह नहीं जानता। वास्तव में तो पुण्य और पाप दोनों एक ही प्रकार के (विभावरूप) भाव हैं वे दोनों आत्मा के ज्ञानानंद स्वरूप को भूलकर निमित्त की ओर उन्मुख होने वाले जो भाव होते हैं उसी के प्रकार हैं। उन में से एक भी भाव स्वभावोन्मुखी नहीं है। एक देव, शास्त्र, गुरु की ओर का शुभभाव और दूसरा स्त्री, कुटुम्ब, पैसा इत्यादि की ओर का अशुभभाव है, इन दोनों की ओर ढलते हुये भावों से अपना ज्ञान आनंद स्वरूप भिन्न है इसे समझे बिना अनादि का महान् भूलरूप अज्ञान दूर नहीं होता। यथार्थ ज्ञान में सच्चे ही देव, शास्त्र, गुरु निमित्तरूप होते हैं। यदि सच्चे देव, शास्त्र, गुरु को निमित्तरूप न जाने तो अज्ञानी है और यदि यह माने कि उनसे अपने को लाभ होता है तो भी मिथ्यात्व है। कोई भी निमित्त मेरा कुछ कर देगा, इस प्रकार की मान्यता महा भूल है और उसका फल दुःख ही है इसलिये निमित्त के लक्ष्य से जीव दुःखी ही होता है, सुखी नहीं होता।

इस बात को ठीक समझ लेना चाहिये कि निमित्त के लक्ष्य से दुःख है किन्तु निमित्त से दुःख नहीं है। पैसा, स्त्री इत्यादि निमित्त है उस से जीव दुःखी नहीं है किन्तु 'यह वस्तु मेरी है, उसमें मेरा सुख है, मैं उसका कर सकता हूं'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार निमित्त का आश्रय करके जीव दुःखी होता है। निमित्त का लक्ष्य करना सो अपना दोष है। उपादान के लक्ष्य से परम आनंद होता है और निमित्त के लक्ष्य से दुःख होता है; किसी भी पर निमित्त का आलंबन दुःख ही है इसलिये ज्ञानानंद स्वरूप से परिपूर्ण अपने उपादान को पहचान कर उसके लक्ष्य में एकाग्रता करना सो परम सुख है। और यही मुक्ति का कारण है ! ३३.

कुदेवादिक के लक्ष्य से अशुभभाव के कारण जीव दुःखी होता है, परंतु सच्चे देव, शास्त्र, गुरु के निमित्त के लक्ष्य से शुभभाव से भी जीव दुःखी होता है जो ऐसा कहा है तो हे उपादान! जीव सुखी किस रीति से होता है? इस प्रकार निमित्त पूछता है—

कहै निमित्त जो दुःख सहै सो तुम हमहि लगाय,
सुखी कौन तैं होत है ताको देहु बताय ॥३४॥

अर्थः—निमित्त कहता है—जीव जो दुःख सहन करता है उसका दोष तू हमारे ऊपर लगाता हैं किंतु यह भी तो बताओ कि जीव सुखी किससे होता है ?

निमित्त के लक्ष्य से अशुभभाव करने से जीव दुःखी होता है परंतु शुभभाव करके पुण्य बांधे तो भी जीव दुःखी होता है ऐसा कहा है तब फिर जीव सुखी किस प्रकार होता है ? यदि उपादान का लक्ष्य करके उसे पहचाने तो ही जीव सुखी हो। जब आत्मा सम्यग्दर्शन के द्वारा अपने स्वभाव को पहचान कर अपने में गुण प्रगट करता है तब अधुरी अवस्था में शुभराग आता है और जहां राग होता हैं वहां पर निमित्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होता ही है क्योंकि स्वभाव के लक्ष्य से राग नहीं होता यदि आत्मस्वभाव की प्रतीति हो तो उस शुभराग को और शुभराग के निमित्त को (सच्चे देव, शास्त्र, गुरु इत्यादि को) व्यवहार से धर्म का कारण कहा जाय, परंतु शुभराग, निमित्त अथवा व्यवहार आत्मा को वास्तव में लाभ करे अथवा मुक्ति का कारण हो यह बात गलत है राग, निमित्त और व्यवहार रहित आत्मा के शुद्ध स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान तथा रमणता ही मोक्ष का सच्चा कारण है।

जिस भाव से सर्वार्थसिद्धि का भव मिलता है अथवा तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है वह भाव स्वभाव के सुख को चूक कर होता है इसलिये दुःख ही है। जिस भाव से भव मिले और मुक्ति को रुके वह भाव विकार है—दुःख है। जितने दुःख होते हैं वे सब भाव निमित्तोन्मुख होने से होते हैं। निमित्त तो परवस्तु है वह दुःख नहीं देता परंतु स्वलक्ष्य को चूक कर परलक्ष्य से जीव दुःखी होता है। इस बात को उपादान ने दृढता पूर्वक सिद्ध कर दिया है इसलिये अब निमित्त ने यह प्रश्न उठाया है कि मेरी ओर के तो सभी भावों से जीव दुःखी ही होता है तो यह बताइये कि सुखी किस से होता है? ३४.

इस के उत्तर में उपादान कहता है—

जो सुख को तुं सुख कहै सो सुख तो सुख नांहि
ये सुख दुःख के मूल हैं, सुख अविनाशि मांहि ॥३५॥

अर्थः—उपादान कहता है कि तू जिस सुख को सुख

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहता है वह सुख ही नहीं है, वह सुख तो दुःख का मूल है। आत्मा के अंतरंग में अविनाशी सुख है।

पिछले दोहे में निमित्त के कहने का यह आशय था कि एक आत्मा स्व को भूलकर पर की ओर झुकाव करता है तो वह दुःखी होता है तब सुखी किसे लेकर होता है? अर्थात् जीव पर के निमित्त के लक्ष्य से शुभभाव करके पुण्य बांधकर उसके फल में सुखी होता है इसलिये जीव को सुखी होने में भी निमित्त की सहायता आवश्यक है। इसके उत्तर में उपादान उसकी 'मूल भूल' को बतलाता है कि हे भाई! तू जिस पुण्य के फल को सुख कहता है वह सुख नहीं है किंतु वह तो दुःख का ही मूल है। पुण्य को और पुण्य के फल को अपना स्वरूप मानकर जीव मिथ्यात्वरूप महापाप की महा-पुष्टि करके अनंत संसार में दुःखी होता है इसलिये वहांपर पुण्य को दुःख का ही मूल कहा है। पंचेन्द्रिय के विषयों की ओर उन्मुख होना तो दुःख है ही किंतु पंचमहाव्रतों का भाव भी आस्रव है दुःख का मूल है।

स्वभाव की ओर का जो भाव है सो सुख का मूल है और निमित्त की ओर का जो भाव है सो दुःख का मूल है। उच्च से उच्च पुण्य परिणाम भी नाशवान है इसलिये पुण्य सुख रूप नहीं है आत्मा के ज्ञान, दर्शन, चारित्र ही सुखरूप हैं। श्री प्रवचनसार में स्वर्ग के सुख को गरम-खौलते हुये घी के समान कहा है। जैसे घी अपने स्वभाव से तो शीतलता करनेवाला है किंतु अग्नि का निमित्त पाकर स्वयं विकृत होने पर वही घी जलाने का काम करता है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसीप्रकार आत्मा का अनाकुल ज्ञान स्वभाव स्वयं सुखरूप है किंतु जब वह स्वभाव से च्युत होकर स्वयं निमित्त का लक्ष्य करता है तब आकुलता होती है, उसमें यदि शुभराग हो तो पुण्य है और अशुभराग हो तो पाप है। परंतु पुण्य उस खोलते हुये घी की तरह जीव को आकुलता में जलाने वाला है और पाप से तो साक्षात् अग्नि के समान नरकादि में जीव अत्यंत दुःखी होता है, इसलिये हे निमित्त ! तू पुण्य के संयोग से जीव को सुख मानता है किंतु उसमें सुख नहीं है, पुण्य के फल में पंचेन्द्रियों के विषयों के संयोग से जीव को किस प्रकार सुख होगा ? उलटा पंचेन्द्रियों के विषय का लक्ष्य करने से जीव आकुलित होकर दुःख भोगता है। सुख तो आत्मा के अंतर स्वभाव में है। अविनाशी ज्ञायक स्वभाव के लक्ष्य से उसकी श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता से ही जीव सुखी होता है, इसलिये अविनाशी उपादान स्वभाव को पहिचान कर उसके लक्ष्य में स्थिर होना चाहिये और निमित्त के लक्ष्य को छोड़ देना चाहिये। प्रथम सेही सत्य का स्विकार करना चाहिये।

आत्मा को सुख चाहिये है, आत्मा को अपने सुख के लिये क्या किसी अन्य पदार्थ की सहायता की आवश्यकता है या अपने सुख स्वरूप की श्रद्धा-ज्ञान करके उसमें स्वयं रमण करने की आवश्यकता है ? सुखी होने के लिये पहले उसका उपाय निश्चित करना ही होगा। यह निश्चय करने के लिये यह निमित्त-उपादान का संवाद चल रहा है।

यहां यह हजारों आत्मा आये हैं सो किस लिये ? यह सब सुख का मार्ग समझ कर सुखी होने के लिये आये हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कोई भी आत्मा नरक में जाने और दुःखी होने की इच्छा नहीं करता। सुख स्वाधीनता में होता है या पराधीनता में? यदि सुख परके आधीन हो तो वह नष्ट होजाय और दुःख आजाय, परन्तु सुख स्वाधीन है और वह आत्मा में ही स्वतंत्र रूप में विद्यमान है किसी परवस्तु की उपस्थिति से आत्मा को सुख मिलता है यह मान्यता गलत है, पराधीन दृष्टि है और वह महा दुःख देनेवाली है। पैसा इत्यादि से मुझे सुख मिलता है अथवा सच्चे देव, शास्त्र, गुरु से आत्मा के धर्म होता है इस प्रकार जो पर द्रव्य की आधीनता की मान्यता है सो आत्मा को अपनी शक्ति में लूला लंगडा बना देने वाली है। भला ऐसा होना किसे अच्छा लगेगा। जो जीव परवस्तु से अपने में सुख दुःख मानता है उस जीवने अपने को शक्तिहीन लूला, लंगडा मान रखा है, जिस की दृष्टि निमित्ताधीन है वह आत्मशक्ति को नहीं पहचानता और इसीलिये वे जीव चार गति में दुःखी हो रहे हैं। जगत् के जीव अपनी आत्मा की सामर्थ्य की संभाल नहीं करते और आत्मा को परावलंबी मानकर उस से सुख शांति मानते हैं किंतु वह मान्यता यथार्थ नहीं है। परावलंबन में सुखशांति है ही नहीं। स्वतंत्रता की यथार्थ मान्यता न हो तो उससे स्वतंत्र सुख कदापि नहीं मिल सकता, इसलिये परतंत्रता की (निमित्ताधीनता की) श्रद्धा में दूःख ही है। धर्म अथवा सुख तो आत्मा को पहिचान के द्वारा ही होता है।

निमित्त ने यह तर्क उपस्थित किया था कि भाई, तमाम दुःखों की पोटकी मेरे ऊपर रख दी है तो यह तो बताइये कि सुख शांति कहां से मिलती है? सभी प्रकार की अनु-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कूलता हो तो सुख हो न ? तब उपादान ने उसके तर्क का निषेध करते हुये कहा कि अनुकूल सामग्री में आत्मा का सुख है ही नहीं। 'शरीर ठीक हो' निरोगता हो, पुख्त उमर हो, और भूक्त भोगी हो यह सब पार करने के बाद मरने के समय शांतिपूर्वक धर्म होता है' इस प्रकार की महा पराधीन दृष्टि से दूःखरूप संसार है स्वाधीनताकी दृष्टि से सत्समागम प्राप्त करके अंतरंग में धर्म समझने का उपाय न करे तो उसे धर्म प्राप्त नहीं होगा और मुक्ति का उपाय नहीं मिलेगा, वह संसार में परिभ्रमण करता रहेगा। सत् को समझने के अपूर्व सुयोग के समय जो समझने से इनकार करता है वह अपने स्वभाव का अनादर करके संयोग बुद्धि से असत् का आदर करके अनंत संसार में दुःखी होता हुआ परिभ्रमण करता है और जिसने अंतरंग से समझने का उल्लास प्रगट करके स्वभाव का सत्कार किया वह उपादान के बल से अल्प कालमें संसार से मुक्त होकर परम सुख प्राप्त करेगा।

स्वाधीनता समझने में सुखका उपाय है तू अपनी अवस्थामें भूल करता है वह भूल तुझे कोई दूसरा नहीं कराता परंतु तूने अपने को भूलकर 'मुझे पर से सुख दुःख होता है' इस प्रकार की विपरीत मान्यता कर रखी है इसीलिये दुःख है। तू ही भूल को करने वाला है और तू ही भूल को मिटाने वाला हैं। स्वभाव को भूलकर तूने जो भूल की है उस भूल को स्वभाव की पहिचान करके दूर कर दे तो सुख तो तेरे अविनाशी स्वरूप में ही भरा हुआ है, वह तुझे प्रगट हो जायगा; इस प्रकार उपादान स्वाधीनता से कार्य करता है। ३५.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निमित्त का तर्क

अविनाशी घट घट बसे सुख क्यों विलसत नांहि;
शुभ निमित्त के योग बिन परे परे बिललाहिं ॥३६॥

अर्थः—निमित्त कहता है कि अविनाशी सुख तो घट घट में प्रत्येक जीव में विद्यमान है तब फिर जीवों को सुख का विलास-सुख का भोग क्यों नहीं होता। शुभ निमित्त के योग के बिना जीव क्षण क्षण में दुःखी हो रहा है।

हे उपादान! तू कहता है कि—निमित्त से सुख नहीं मिलता और अविनाशी उपादान से ही सुख मिलता है तो सभी आत्माओं के स्वभाव में अविनाशी सुख तो है ही, तथापि वे सब उसे क्यों नहीं प्राप्त कर पाते? क्या यह सच्च नहीं है कि उन्हें योग्य निमित्त प्राप्त नहीं हैं। यदि आत्मा में ही अविनाशी सुख भरा हो तो सब जीव उसे क्यों नहीं भोगते? और जीव बाह्य सुख में क्यों झींकता रहता है? उपादान तो सबको प्राप्त है किंतु अनुकूल निमित्त मिलने पर ही जीव सुखी होता है। इस प्रकार निमित्त की ओर से अज्ञानियों के प्रश्न अनादि काल से चले आरहे हैं और उपादान की पहिचान के बल से उन प्रश्नों को उड़ा देनेवाले ज्ञान भी अनादि काल से हैं।

जिस आत्मा को स्वाधीन सुख स्वभाव की खबर नहीं है वह इस प्रकार शंका करता है कि यदि सुख आत्मा में ही हो तो ऐसा कौन जीव है जिसे सुख भोगने की भावना नहीं होगी और तब फिर वह सुख को क्यों नहीं भोगेगा? इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिये सुख के लिये अनुकूल निमित्त आवश्यक हैं और निमित्त के आधार पर ही आत्मा का सुख है। मानव देह, आठ वर्ष का काल, अच्छा क्षेत्र, निरोग शरीर और सत् श्रवण करानेवाला सत्पुरुष का सत्समागम यह सब योग हो तो जीव धर्म को प्राप्त कर सुखी किन्तु जीव को अच्छे निमित्त नहीं मिले इसलिये सुख प्राप्त नहीं हुआ और निमित्त के अभाव में जीव एक के बाद एक दुःख भोगता रहता है, इसलिये सुख पाने के लिये जीव को निमित्त की सहायता आवश्यक है। इस प्रकार यह निमित्त का तर्क है! ३६.

उपादान का उत्तर—

शुभ निमित्त इह जीवको मिल्यो कंइ भवसार।
पै इक सम्यक्दर्श विन भटकत फिर्यो गंवार ॥३७॥

अर्थः—उपादान कहता है—शुभ निमित्त इस जीव को कई भवों में मिले, परंतु एक सम्यग्दर्शन के विना यह मूर्ख जीव [अज्ञान भाव से] भटक रहा है।

इस दोहामें निमित्ताधीन दृष्टिवाले जीव को गंवार कहा है। जिस जीव के सम्यग्दर्शन नहीं है वह गंवार है—अज्ञानी है। यह परम सत्य भाषा है। श्री सर्वज्ञ भगवान के पक्ष से और स्वभाव की साक्षी से अनंत सम्यग्ज्ञानी कहते हैं कि हे भाई! जीव को सम्यग्दर्शन के विना सुख नहीं होता। स्वयं ही अपने सारे स्वभाव को भूल गया और पर के साथ सुख दुःख का संबंध मान लिया इसीलिये जीव परिभ्रमण करता है और दुःखी होता है। इस अनंत संसार में परिभ्रमण करते हुये जीव को अच्छे-उत्कृष्ट निमित्त मिले, साक्षात् श्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीर्थंकर भगवान, उनका समवशरण (जिस में इन्द्र, चक्रवर्ती, गणधर और संत मुनियों के झुंड के झुंड आते थे ऐसी धर्म-सभा) तथा दिव्यध्वनि का, जिसमें उत्कृष्ट उपदेशों की मूसलधार वर्षा होती थी, ऐसे सर्वोत्कृष्ट निमित्तों के पास अनंतवार जाकर बैठा और भगवान की दिव्य वाणी को सुना तथापि तू अंतरंग की रुचि के अभाव से (निमित्तों के होने पर भी) धर्म को नहीं समझा। तूने उपादान की जागृति नहीं की इसलिये सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ। हे भाई ! जहां वस्तु स्वभाव ही स्वतंत्र है तब फिर उसमें निमित्त क्या करेगा ? यदि जीव स्वयं अपने स्वभाव की पहिचान करे तो कोई निमित्त उसे रोकने के लिये समर्थ नहीं है और यदि जीव अपने स्वभाव को न पहिचाने तो कोई निमित्त उसे पहिचान करा देने के लिये समर्थ नहीं है।

अनंत काल से संसार में परिभ्रमण करते करते प्रत्येक जीव बड़ा राजा हुआ और समवशरण में बिराजमान साक्षात् चैतन्यदेव श्री अर्हंत भगवान को हीरा माणिक के थाल में कल्पवृक्षों के फलफूलों से पूजा करते हुये इन्द्रों को देखा और स्वयं भी साक्षात् भगवान की पूजा की; किंतु ज्ञान स्वभावी रागरहित अपने निरालम्बन आत्मस्वरूप को नहीं समझा इसलिये सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं हुआ। इसीलिये गंवार होकर-अज्ञान भाव से अनन्त संसार में परिभ्रमण करता रहा। भगवान भिन्न और मैं भिन्न हूं अपने स्वरूप से मैं भी भगवान ही हूं ऐसी यथार्थ पहिचान के विना भगवान की पूजा करने से धर्म का लाभ नहीं होता। कहीं भगवान किसी को सम्यग्दर्शन दे नहीं देते। धर्म किसी के आशीर्वाद से नहीं मिलता,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मात्र अपनी पहचान से ही धर्म होता है। इसके अतिरिक्त अन्य किसी उपाय से धर्म का प्रारम्भ नहीं होता।

मैं आत्मा स्वतंत्र भगवान हूं, कोई पर वस्तु मेरा कल्याण नहीं कर सकती। अपनी पहिचान के द्वारा मैं ही अपना कल्याण करता हूं। इसे समझे विना जैन का द्रव्य लिंगी साधु हुआ, क्षमा धारण की, भगवान के पास गया, शास्त्रों को पढ़ा तथा आत्मा की रूचि और प्रतीति किये विना अनंत दुःखी होकर संसार में परिभ्रमण किया। यदि उपादान स्वरूप आत्मा की प्रतीति स्वयं न करे तो निमित्त क्या कर सकते हैं? जैन का द्रव्यलिंग और भगवान तो निमित्त हैं और वास्तव में क्षमा का शुभराग तथा शास्त्र का ज्ञान भी निमित्त है। यह सब निमित्त होने पर भी अपनी भूल के कारण ही जीव को सुख नहीं होता। एक मात्र सम्यग्दर्शन के अतिरिक्त जीव को सुखी करने में कोई समर्थ नहीं है।

यदि निमित्त जीव को सुखी न करता हो और उपादान से ही सुख प्रगट होता हो तो समस्त जीवों के स्वभाव में अविनाशी सुख भरा ही है, उसे वे क्यों नहीं भोगते। इस प्रकार निमित्त का प्रश्न है उसके उत्तर में कहते है—

हे भाई! यह सच है कि सब जीवों के स्वभाव में अविनाशी सुख है किंतु वह शक्तिरूप है और शक्ति का उपभोग नहीं होता किंतु जो जीव अपनी शक्ति की सम्हाल करते हैं वे ही उसको भोगते हैं। यदि निमित्त से सुख प्रगट होता हो तो निमित्त तो बहुत से जीवों के होता है तथापि उन सब के सुख क्यों प्रगट नहीं होता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनंत संसार में परिभ्रमण करते हुये अनेक भवों में इस जीव को शुभ* निमित्त मिले परंतु एक पवित्र सम्यग्दर्शन के बिना जीव अपने गंवारपन से संसार में परिभ्रमण कर रहा है जिसे अपने स्वाधीन स्वभाव की पहिचान नहीं है और जो यह मानता है कि मेरा सुख मुझे देव शास्त्र गुरु अथवा शुभराग इत्यादि पर निमित्त दे देंगे, उसे यहांपर ग्रंथकार ने गंवार—मूर्ख कहा है। रे गंवार! तू स्वभाव को भूलकर निमित्ताधीन दृष्टि से ही परिभ्रमण करता रहा है। अपने ही दोष से तूने परिभ्रमण किया है, तू यह मानता ही नहीं कि तुझ में स्वतंत्र सुख है इसलिये तुझे सुख का अनुभव नहीं होता। कर्मों ने तेरे सुख को नहीं दवा रखा है इसलिये तू अपनी मान्यता को बदल दे।

निमित्ताधीन दृष्टि वाले को यहां गंवार कहा है। इस में द्वेष नहीं किंतु करुणा है। अवस्था की भूल बताने के लिये गंवार कहा। साथ ही यह समझाया है कि हे भाई! तेरा गंवारपन तेरी अवस्था की भूल से है। स्वभाव से तो तू भगवान है, इसीलिये अपने स्वभाव की पहिचान के द्वारा तू अपनी पर्याय के गंवारपन को दूर कर दे। जो अपनी भूल को ही स्वीकार नहीं करते और निमित्तों का ही दोष निकाला करते हैं वे अपनी भूल को दूर करने का प्रयत्न नहीं करते और इसीलिये उनका गंवारपन दूर नहीं होता। सम्यग्दर्शन

---

* शुभ निमित्त=सच्चे देव शास्त्र-गुरु। कुदेवादिक अशुभ निमित्त हैं, वे सुख के निमित्त के रूप में भी नहीं कहे जा सकते। सच्चे देव शास्त्र गुरु को मानने वाले भी निमित्त के लक्ष्य से अटक रहे हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के बिना मिथ्यादृष्टि होने से पागल जैसा होकर स्वभाव को भूल गया और निमित्तों की श्रद्धा की, परंतु स्वोन्मुख होकर अपनी श्रद्धा नहीं की; इसीलिये अनंत संसार में भव धारण करके दुःख भोग रहा है। अमुक निमित्त हो तो ऐसा हो और अमुक निमित्त हो तो वैसा हो इस प्रकार पराधीन दृष्टि ही रखी इसलिये सुख नहीं हुआ 'परंतु मैं स्वतंत्र हूं, अपने में अपने उपादान से मैं जो कुछ करूं वह हो, मुझे रोकने में कोई समर्थ नहीं' इस प्रकार उपादान की सच्ची समझ से पराधीन दृष्टि का नाश करते ही जीव को अपने सुख का विलास होता है, इसलिये हे निमित्त! उपादान की जागृति से जीव को सुख होता है जीव के सुखी होने में निमित्तों की कोई भी सहायता नहीं होती। जैसे जहां चक्रवर्ती होता है वहां चपरासी भी हाजिर ही रहते हैं किन्तु उस पुरुष का चक्रवर्तित्व कहीं चपरासी के कारण नहीं है, इसी प्रकार जीव जब अपनी जागृति से सम्यग्दर्शनादि प्रगट करके सुखी होता है तब निमित्त स्वयं उपस्थित होते हैं परंतु वे जीव के सुख के कर्ता नहीं हैं। जीव स्वयं यदि सच्ची समझ न करे तो कोई भी निमित्त उसे सुखी करने में समर्थ नहीं है।

सच्चा निमित्त मिले बिना सम्यग्ज्ञान नहीं होता अर्थात् जीव जब स्वयं ज्ञान करता है तब सच्चे निमित्तों की उपस्थिति होती है। यदि स्वयं न समझे और ज्ञान प्रगट न करे तो सत्समागम इत्यादि का संयोग को किसीभी प्रकार निमित्त भी नहीं मान सकते। अर्थात् जीव स्वयं सम्यग्ज्ञान प्रगट न करे तो निमित्त किसका? इसलिये कभी भी कोई भी कार्य निमित्त से नहीं होता। सभी कार्य सदा उपादान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से ही होते हैं, इसलिये सुख भी उपादान की जागृति के द्वारा सम्यग्दर्शन से ही होता है।

इसप्रकार सुख जीव कें सम्यग्दर्शन से ही प्रगट हो सकता है ऐसी उपादान की बात को पात्र जीवों ने समझकर स्वीकार किया और निमित्त की हार हुई। जिज्ञासु पात्र जीव उपादान निमित्त के संवाद से एक के बाद दूसरी बात का निर्णय करता आता है और निर्णय पूर्वक स्वीकार करता है इसप्रकार यहां तक तो निमित्त की हार हुई। अब कुछ समय बाद निमित्त हार जायगा और वह स्वयं अपनी हार को स्वीकार कर लेगा। ३७.

सम्यग्दर्शन तक तो बात यह है कि सम्यग्दर्शन से ही जीव को सुख होता है और सच्चे निमित्तों के उपस्थित होने पर भी सम्यग्दर्शन न होने के कारण ही जीव को दुःख है, सम्यग्दर्शन की बात को स्वीकार कराने के बाद अब सम्यक् चारित्र संबंधी निमित्त की ओर का तर्क यह है:—

सम्यक्‌दर्श भये कहा त्वरित मुक्ति में जाहिं ?
आगे ध्यान निमित्त है ते शिव को पहुंचाहिं ॥३८॥

अर्थ:—सम्यग्दर्शन होने से क्या जीव तत्काल मोक्ष में चला जाता है? नहीं। आगे भी ध्यान निमित्त है जो मोक्ष में पहुंचाता है। यह निमित्त का तर्क है।

निमित्त कहता है कि यह सच है कि सम्यग्दर्शन से ही जीव को सुख का उपाय प्रगट होता है, सम्यग्दर्शन से मुक्ति का उपाय होता है लेकिन निमित्त के लक्ष्य से रागादि भाव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से मोक्ष का उपाय नहीं होता, इस प्रकार पंच महाव्रत की क्रिया से धर्म होता है, देव-शास्त्र-गुरु अथवा पुण्य से लाभ होता है, तीर्थंकर प्रकृति का भाव अच्छा है, इस प्रकार का विपरीत मान्यता का तर्क निमित्तने अब छोड़ दिया है, किंतु उपर की दशामें निमित्त का आधार है; ऐसा तर्क करता है।

सम्यग्दर्शन के बाद भी निमित्त बलवान है, मात्र सम्यग्दर्शन से ही मुक्ति नहीं हो जाती। सम्यग्दर्शन के बाद ही ध्यान करना पड़ता है, उस ध्यान में भेद का विकल्प उठता है-राग होता है, इसलिये वह भी निमित्त हुआ या नहीं? आत्मा की यथार्थ पहिचान होने के बाद स्थिरता होने पर भले ही महाव्रतादि के विकल्प को छोड दें किन्तु वस्तु को ध्यान में तो रखना पड़ता ही है। वस्तु में स्थिरता करते हुये राग मिश्रित विचार आये विना नहीं रहेंगे, इसलिये राग भी निमित्तरूप हुआ या नहीं? देखिये निमित्त कहां तक जा पहुंचा? अंत तक निमित्त की आवश्यकता होती हैं। इस से सिद्ध हुआ कि निमित्त ही बलवान है। निमित्त का यह अंतिम तर्क है।

निमित्तने जो तर्क उपस्थित किया है वह नयआदिके विकल्पके पक्ष का तर्क है। सम्यग्दर्शन के बाद स्थिरता करते हुये बीच में भेद का विकल्प आये विना नहीं रहता। बीच में विकल्परूप व्यवहार आता है यह बात सच है किंतु वह विकल्प मोक्षमार्ग में किंचित् मात्र भी सहायक नहीं है, निमित्त दृष्टि वाला तो उस विकल्प को ही मोक्षमार्ग समझ लेता है, वही दृष्टि की 'मूल में भूल' है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मस्वभाव की दृष्टिवाला जीव अभेद के पक्ष से समझता है अर्थात् जो भेद होता है अथवा राग होता है उसे वह जानता है किंतु मोक्षमार्ग के रूप में अथवा मोक्षमार्ग में सहायक के रूप में उसे वह स्वीकार नही करता और निमित्त को पकड़कर अज्ञानी जीव भेद के पक्ष से बात करता है, उसे अभेद स्वभाव का भान नहीं है, इसलिये वह मानता है कि ध्यान करते हुये बीच में भेद भंग का विकल्प आये बिना नहीं रहता; इसलिये वह विकल्प ही ध्यान में सहायक है। इस प्रकार ज्ञानी और अज्ञानी की दृष्टि में ही अंतर है।

स्वाश्रय स्वसन्मुख होकर ज्ञानमें एकाग्र होना ध्यान है, एक गुण को लक्ष्य में लेकर विचार करना सो भेद भंग है, यह भेद भंग बीच में आता ही है, इसलिये उस भेद के राग की सहायता से ही मोक्ष होता है। यह निमित्त का तर्क है। इस तर्क में पर से कोई संबंध नहीं रखा, अब तो भीतर जो विकल्परूप व्यवहार बीच में आता है उस व्यवहार को जो अज्ञानी मोक्षमार्ग के रूप में मानता है उसी का यह तर्क है। ३८.

उपादान निमित्त के तर्क का खंडन करता है:-

छोर ध्यान की धारणा मोर योग की रीत।
तोरि कर्म के जालको जोर लई शिव प्रीत ॥३९॥

अर्थ:—उपादान कहता है कि ध्यान की धारणा को छोड़कर, योग की रीत को समेट कर, कर्म जाल को तोड़कर जीव अपने पुरुषार्थ के द्वारा शीव पद की प्राप्ति करते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे निमित्त ! जो भेद का विकल्प उठता है उसे तू मोक्ष का कारण कहता है किंतु वह तो बंध का कारण है। जब जीव उस विकल्प को छोडता है तभी मोक्ष होता है। सम्यग्दर्शन के बाद ध्यान का विकल्प उठता है उसे छोडकर मुक्ति होती है। उस विकल्प को रखकर कभी भी मुक्ति नहीं हो सकती। ध्यान की धारणा को छोड़कर अर्थात् स्वभाव में स्थिर होऊं ऐसा जो विकल्प उठता है उसे छोडकर अभेद् स्वरूप में स्थिर होने पर केवलज्ञान और मोक्ष होता है। इसलिये मात्र उपादान के बल से ही कार्य होता है निमित्त से कार्य नहीं होता। यहां पर उपादान को निश्चय और निमित्त को व्यवहार के रूप में लिया है। स्वभाव में एकाग्रता रूप अभेद् परिणति निश्चय है, वही उपादान है, वही मोक्ष का कारण है और जो भेदरूप विकल्प उठता है वह व्यवहार है, निमित्त है, वह मोक्ष का कारण नहीं है। ध्यान की धारणा को छोडने से केवलज्ञान होता है तथा केवलज्ञान होने के बाद भी मन, वचन, काय के योग का जो कंपन होता है वह भी मोक्षका कारण नहीं है उस योग की क्रिया को तोड-मरोडकर मोक्ष होता है।

मन, वचन, काय के विकल्प को तोड-मरोडकर स्वरूप के भीतर पुरुषार्थ करके राग से छूट कर अभेद स्वरूप में स्थिर होने पर केवलज्ञान और अंत में मुक्ति होती है।

उपादान ने स्वभाव की ओर से तर्क उपस्थित करके निमित्त के पराधीनता के तर्क को खंडित कर दिया है। इस प्रकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३९ दोहों तक उपादान और निमित्तने परस्पर तर्क उपस्थित किये उन दोनों के तर्कों को बराबर समझ कर सम्यग्ज्ञान रूपी न्यायाधीश अपना निर्णय देता है कि उपादान आत्मा की ओर से स्वाश्रित बात करने वाला है और निमित्त आत्मा को पराश्रित बतलाता है इनमें से आत्माको और प्रत्येक वस्तु को स्वाधीनता बतानेवाले उपादान की बात बिल्कुल सच है और आत्मा को तथा प्रत्येक वस्तु को पराधीन बतानेवाले निमित्त की बात बिल्कुल गलत है। इसलिये निमित्त का पराजय घोषित किया जाता है।

निमित्त पक्षवाले की ओर से अंतिम अपील की जाती है कि निमित्त की बात गलत क्यों है और निमित्त कैसे पराजित हो गया? देखिये जब लोग धर्मसभा में एकत्रित होकर सत्समागम प्राप्त करते हैं तब उनके अच्छे भाव होते हैं और जब वे घर पर होते हैं तो ऐसे अच्छे भाव नहीं होते। अच्छा निमित्त मिलने से अच्छे भाव होते हैं इसलिये निमित्त का कुछ बल तो स्वीकार करना ही चाहिये।

उपादान इस अपील का खंडन करता हुआ कहता है कि स्वतः बदलने से अपने भाव बदलते हैं, निमित्त को लेकर किसी के भाव नहीं बदलते। उपादान के कार्य में निमित्त का अंशमात्र भी बल नहीं है। उपादान के कार्य में तो निमित्त की नास्ति है। उपादान के बाहर ही वह लोटता रहता है किंतु वह उपादान में प्रवेश नहीं कर सकता और वह दूर से भी कोई असर, मदद और प्रेरणा नहीं कर सकता। यदि कोई यह कहे कि "निमित्त उपादान का कुछ भी नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करता परंतु जैसा निमित्त होता है तदनुसार उपादान स्वयं परिणमन करता है" तो यह बात भी बिलकुल गलत और वस्तु को पराधीन बतानेवाली है। निमित्तानुसार उपादान परिणमन नहीं करता किंतु उपादान स्वयं अपनी शक्ति से स्वाधीनतया परिणमन करता है। योग्यतानुसार कार्य करता है।

सत्समागम के निमित्त का संयोग हुआ इसलिये आपके भाव सुधर गये यह बात नहीं है। सत्समागम का निमित्त होने पर भी किसी जीव को अपने भावमे सच्ची बात नहीं बैठती और उल्टा वह सत का विरोध करके दुर्गति में जाता है क्योंकि उपादान के भाव स्वतंत्र हैं। सत् निमित्त की संगति होने पर भी यदि उपादान स्वयं जागृति न करे तो सत्य को नहीं समझा जा सकता और जो सत्य को समझते हैं वे सब अपने उपादान की जागृति करके ही समझते हैं। श्री भगवान के समवशरण में करोड़ों जीव भगवान की वाणी सुनते हैं वहांपर वाणी सबके लिये एकसी होती है फिर भी जो जीव अपने उपादान की जागृति करके जितना समझते हैं उन जीवों के उतना ही निमित्त कहलाता है। कोई बारह अंग का ज्ञान करता है तो उसके बारह अंगों के लिये भगवान की वाणी का निमित्त कहलाता है और कोई किंचित् मात्र भी नहीं समझता तो उसके लिये किंचित् भी निमित्त नहीं कहलाता। कोई उल्टा समजता है तो उसकी उल्टी समझ में निमित्त कहलाता है। इस से सिद्ध होता है कि उपादान स्वाधीन रूप में ही कार्य करता है, निमित्त तो मात्र आरोप रूप ही है। भगवान के पास और सच्चे गुरु के पास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनंतवार गया किंतु तीसमारखां का बेटा स्वयं जागृत होकर अपने भीतर से भूल को दूर करे तभी तो सत्य को समझेगा? कोई देव, शास्त्र, गुरु उसके आत्मा में प्रवेश करके तो भूल को बाहर तो नहीं निकाल देंगे?

जैसे सिद्ध भगवान का ज्ञान के परिणमन में लोकालोक निमित्त है किंतु क्या सिद्ध भगवान का ज्ञानको लोकालोक के किसी पदार्थ परिणमन कराते हैं अथवा उनका कोई असर भगवान पर होता है, ऐसा तो कुछ नहीं होता, इसप्रकार सिद्ध भगवान के ज्ञान की तरह सर्वत्र समझ लेना चाहिये कि निमित्त मात्र उपस्थितिरूप है, वह किसी को परिणमन नहीं कराता। अथवा उपादान पर उसका किंचित्मात्र भी असर नहीं होता, इसलिये उपादान की ही विजय है। प्रत्येक जीव अपने अपने अकेले स्वभाव के अवलंबन से ही धर्म को पाते हैं, कोई भी जीव परावलंबन से धर्म को प्राप्त नहीं करता।

[यहांपर यही प्रयोजन है कि जीव को मुक्ति हो इसलिये मुख्यतया जीव के धर्म पर ही उपादान निमित्त के स्वरूप को घटित किया है, परंतु तदनुसार ही जीव अपना अधर्मभाव ही अपनी उपादान की योग्यता से करता है और जगत की समस्त जड़ वस्तुओं की क्रिया भी उन उन जड वस्तुओं के उपादान से होती है। शरीर का हलन चलन, शब्दों का बोला या लिखा जाना यह सब परमाणु के ही उपादान से होता है वहाँ निमित्त होने पर भी निमित्त उसमें कुछ भी नहीं करता, इसी प्रकार सर्वत्र समझ लेना चाहिये।]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पराजय की स्वीकृति

अब यहांपर सब बातों को स्वीकार करके निमित्त अपनी पराजय स्वीकार करता है—

तब निमित्त हार्यो तहां अब नहिं जोर बसाय ।
उपादान शिव लोक में पहुंच्यौ कर्म खपाय ॥४०॥

अर्थः—तब निमित्त हार गया अब कुछ जोर नहीं करता और उपादान कर्म का क्षय करके शिवलोक में (सिद्धपद में) पहुंच गया ।

उपादान निमित्त के संवाद से अनेकप्रकार आत्मा के स्वतंत्रता के स्वरूप की प्रतीति करके उपादान पक्षवाला जीव अपनी सहज शक्ति को प्रगट करके मुक्ति में अकेला शुद्ध संयोग रहित शुद्धरूप में रह गया । जो अपने स्वभाव से शुद्ध रहा उसने अपने में से ही शुद्धता प्राप्त की है किंतु जो राग-विकल्प इत्यादि छूट गये हैं उसमें से शुद्धता को प्राप्त नहीं किया । कर्म का और विकारभाव आदि का नाश करके तथा मनुष्य देह, पांचइंद्रियां और देव, शास्त्र, गुरु इत्यादि सब का संग छोड़कर उपादान स्वरूप की एकाग्रता के बल से जीवने अपनी शुद्धदशा को प्राप्त कर लिया ।

प्रश्न—इस दोहे में लिखा है कि "अब नहिं जोर बसाय" अर्थात् जीव सिद्ध होने के बाद निमित्त का कुछ वश नहीं चलता किंतु जीव की विकार दशा में तो निमित्त का जोर चलता है न ?

उत्तर—नहीं, निमित्त तो पर वस्तु है । आत्मा के ऊपर पर वस्तु का जोर कदापि चल ही नहीं सकता किंतु जीव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पहले अज्ञानदशा में निमित्त का बल मान रहा था और अब यथार्थ प्रतीति होने पर उसने उपादान निमित्त दोनों को स्वतंत्र-तया जानलिया और अपनी स्वतंत्रशक्ति सम्हाल कर स्वयं सिद्धदशा प्रगट करली। निमित्त हार गया इस का मतलब यह है कि अज्ञानदशा में निमित्त की ही दृष्टि थी। ज्ञानदशा के प्रगट होने पर अज्ञान का नाश होगया और निमित्त दृष्टि दूर होगई इसलिये यह कहा गया है कि निमित्त हार गया। ४०.

इस प्रकार निमित्ताधीन दृष्टि का नाश होने पर उपादान को अपने में क्या लाभ हुआ? यह बतलाते हैं—

उपादान जीत्यों तहां निजबल कर परकाश।
सुख अनंत ध्रुव भोगवे अंत न वरन्यो तास॥४१॥

अर्थः—इस प्रकार निज बल का प्रकाश कर उपादान जीता [वह उपादान अब] उस अनंत ध्रुव सुख को भोगता है जिसका अंत नहीं है।

आत्मा का स्वभाव शुद्ध ध्रुव अविनाशी है उस स्वभाव के बल से उपादानने अपने केवलज्ञान का प्रकाश किया है और अब वह स्वाधीनता से अनंत ध्रुव सुख को भोग रहा है। पहले निमित्ताधीन दृष्टि से पराधीनता के कारण [परलक्ष्य करके] दुःख भोग रहा था और अब स्वभाव को पहचान कर उपादानदृष्टि से स्वाधीनतया शुद्धदशा में अनंतकाल के लिये सुखानुभव कर रहा है। सिद्धदशा होने के बाद समय समय पर स्वभाव में से ही आनंद का भोग किया करता है। अपने सुख के लिये जीव को शरीर, पैसा इत्यादि पर द्रव्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उन किसी के न होने पर भी सिद्ध भगवान स्वाधीनतया संपूर्ण सुखी हैं।

देखिये यहां कहा है कि उपादान ने अपने बल का प्रकाश करके सुख प्राप्त किया है अपने में जो शक्ति थी उसे पहिचान कर उसके द्वारा उस बल को प्रगट करके ही सुख प्राप्त हुआ है। किसी निमित्त की सहायता से सुख प्राप्त नहीं किया। ४१.

अब तत्त्व स्वरूप को कहते हैं उसमें बड़ा सुंदर न्याय है:-

उपादान अरु निमित्त ये सब जीवन पे वीर।
जो निजशक्ति संभार ही सो पहुंचे भव तीर ॥४२॥

अर्थः—उपादान और निमित्त ये सभी जीवों के हैं किंतु जो वीर अपनी उपादान शक्ति की संभाल करते हैं वे भव के पार को प्राप्त होते हैं।

सभी जीव भगवान हैं, और अनंत गुणवाले हैं, सभी आत्माओं की उपादान शक्ति समान है और सभी जीवों के बाह्य निमित्त भी हैं, इसप्रकार उपादान और निमित्त दोनों त्रिकाल सभी जीवों के हैं। ऐसी कोई आत्मा नहीं है जिस में उपादान शक्ति की पूर्णता न हो तथा ऐसी कोई आत्मा नहीं है कि जिसको निमित्त न हो। जैसा कार्य जीव स्वयं करता है उस समय उसे अनुकूल निमित्त होता ही है, निमित्त होता अवश्य है, किंतु उपादान के कार्य में कुछ करता नहीं है। उपादान और निमित्त दोनों अनादि अनंत हैं। जो अपने उपादान की जागृति करके धर्म समझते हैं उनके सत् निमित्त होता है और जो जीव धर्म को नहीं समझते उनके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्म वगैरह निमित्त कहलाते हैं। सिद्धो के भी परिणमन इत्यादि में काल, आकाश आदि का निमित्त हैं, और ज्ञान में ज्ञेय के रूप में सारा जगत् निमित्त है। किसी भी जगह अकेला उपादान नहीं होता, क्योंकि ज्ञान स्व-पर को जानने की शक्तिवाला है इसलिये वह उपादान और निमित्त दोनों को जानता है यदि उपादान और निमित्त दोनों को न जाने तो ज्ञान असत् कहलायेगा तथापि ध्यान रहे कि उपादान और निमित्त दोनों स्वतंत्र पदार्थ हैं, वे एक दूसरे का कुछ भी नहीं करते। उपादान और निमित्त दोनों वस्तुएं अपने अपने अस्तित्व में हैं जो जीवअपनी उपादान शक्ति को संभालता है उसी को सम्यग्दर्शनादि गुण प्रगट होकर मोक्ष होता है, किंतु जो जीव उपादान को भूलकर निमित्त की ओर लक्ष्य करता है वह अपनी शक्ति को भूलकर पर से भीख मांगनेवाला चौरासी का भिखारी है। पर लक्ष्य से वह भिखारीपन दूर नहीं होता और जीव सुखी नहीं हो सकता। यदि अपने स्वभाव की स्वाधीनता को प्रतीति में लें तो सर्व पर द्रव्यों का मुंह देखना दूर हो जाय और स्वभाव का स्वाधीन आनंद प्रगट हो।

जब स्व लक्ष्य करके शक्ति की संभाल की तब वह शक्ति प्रगट हुई अर्थात् सुख हुआ। उपादान शक्ति तो त्रिकाल है, वह मुक्ति का कारण नहीं, किंतु उपादान शक्ति की संभाल मुक्ति का कारण है। उपादान शक्ति की संभाल ही दर्शन ज्ञान चारित्ररूप मोक्षमार्ग है। पहले उपादान स्वभाव की श्रद्धा की कि मैं स्वयं अनंत गुण शक्ति का पिंड हूं पर से पृथक् हूं, मुझे पर में से कुछ भी नहीं लेना है किन्तु मेरे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वभाव में से ही प्रगट होता है ऐसी प्रतीति और ज्ञान करके उस स्वभाव में स्थिरता करना सो उपादान शक्ति की संभाल है और वही मोक्ष का कारण है।

उपादान कारण और निमित्त कारण दोनों पर्याय रूप हैं द्रव्य, गुण त्रैकालिक हैं उसमें निमित्त नहीं होता। त्रैकालिक शक्ति उपादान है और उस त्रैकालिक शक्ति की वर्तमान पर्याय उपादान कारण है। उपादान कारण अपनी पर्याय में कैसा कार्य करता है और उस समय किस प्रकार का पर संयोग होता है यह बताने के लिये पर वस्तु को निमित्त कारण कहा गया है। पर वस्तु को निमित्त कह कर उसका ज्ञान कराया है, क्योंकि ज्ञान की शक्ति स्व-पर को जानने की है परंतु पर द्रव्य का कोई भी बल बताने के लिये उसे निमित्त नहीं कहा है।

जहां यह कहा जाता है कि 'जीव ने ज्ञानावरणी कर्म का बंध किया है' वहां वास्तव में यह बताने का आशय है कि जीवने अपनी पर्याय में ज्ञान की हीनता की है, परंतु 'जीव जड़ परमाणुओं का कर्ता है' यह बताने का आशय नहीं है।

प्रश्न—उपादान तो सभी जीवों के त्रिकाल है यह बात इस दोहे में बताई गई है और इस संवाद में यह भी कहा गया है कि मात्र उपादान की शक्ति से ही कार्य होता है यदि मात्र उपादान से ही कार्य होता हो तो अनंत काल से उपादान के होने पर भी पहले कभी शुद्ध कार्य प्रगट नहीं किया था; किंतु तब फिर आज ही प्रगट करने का क्या कारण है?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तर—जो त्रिकाल उपादान है वह तो द्रव्यरूप है वह सब जीवों के है, परंतु कार्य तो पर्याय में होता है। जब जो जीव अपनी उपादान शक्ति को संभालता है तब उस जीव के शुद्धता प्रगट हो जाती है। द्रव्य की शक्ति त्रिकाल है, किंतु जब स्वयं परिणति जागृत की तब वह शक्ति पर्याय रूप व्यक्त हो गई। जब स्वयं स्वोन्मुखी रुचि और अपनी ओर के भाव के द्वारा अपनी परिणति को जागृत करता है तब होती है; उसमें कोई कारण नहीं। अर्थात् वास्तव में जैसे द्रव्य-गुण अकारणीय है उसी प्रकार शुद्ध अथवा अशुद्ध पर्याय अकारणीय है। शुद्ध अथवा अशुद्ध पर्याय को उस उस समय में स्वयं स्वतः करता है, उसमें पूर्वापर की दशा अथवा कोई पर द्रव्य कारण नहीं है। पर्याय का कारण पर्याय स्वयं ही है, पर्याय अपनी शक्ति से जिस समय जागृत होती है उस समय जागृत हो सकती है। जिस पर्याय में जितना स्वभाव की ओर का बल होता है (अर्थात् जितने अंश में स्व समय रूप परिणमन करता है) उस पर्याय में उतनी शुद्धता होती है, कारण कार्य एक ही समय में अभेद है। यहां पर प्रत्येक पर्याय में पुरुषार्थ की स्वतंत्रता बताई गई है। पहली पर्याय के मिथ्यात्व रूप होने पर भी दूसरे समय में स्वरूप की प्रतीति करके सम्यक्त्व रूप पर्याय प्रगट हो सकती है। यहां कोई पूछ सकता है कि जो सम्यक्त्व पहली पर्याय में नहीं था वह दूसरी पर्याय में कहां से आगया? इसका उत्तर यह है कि उस समय की पर्याय की स्वतंत्र सामर्थ्य प्रगट होने से सम्यक्त्व हुआ है, पूर्व पर्याय नई पर्याय की कर्ता नहीं है परंतु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नई प्रगट होनेवाली अवस्था स्वयं ही अपने पुरुषार्थ की योग्यता से सम्यक्त्वरूप हुई है जिस समय पुरुषार्थ करता है उस समय सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, उसमें कोई कारण नहीं है, पर्याय का पुरुषार्थ स्वयं ही सम्यग्दर्शन का कारण है और वह पर्याय द्रव्य में से ही प्रगट होती है इसलिये अभेद विवक्षा से द्रव्य स्वभाव ही सम्यग्दर्शनका कारण है। ४२.

उपादान की महिमा

भैया महिमा ब्रह्म की कैसे वरनी जाय ?
वचन अगोचर वस्तु है कहिवो वचन बताय ॥४३॥

अर्थः—ग्रंथकार भैया भगवतीदासजी आत्मस्वभाव के महिमा का वर्णन करते हुये कहते हैं कि भाई ! ब्रह्म की (आत्मस्वभाव की) महिमा का वर्णन कैसे किया जा सकता है वह वस्तु वचन अगोचर है, उसे किन वचनों के द्वारा बताया जा सकता है।

जो जीव वस्तु के स्वतंत्र उपादान स्वभाव को समझता है उसे उस स्वभाव की महिमा प्रगट हुये बिना नहीं रहती। अहा ! ऐसा अच्छा उपादान स्वभाव। अनादि अनंत संपूर्ण स्वतंत्रता से वस्तु टिक रही है, ऐसे वस्तु स्वभाव को वचन से कैसे वर्णन किया जा सकता है, वचन से उसकी महिमा का पार नहीं आ सकता। ज्ञान के द्वारा ही उसकी यथार्थ महिमा जानी जा सकती है। स्वभाव की महिमा बहुत है वह वचन से परे है फिर भी उसे वचन के द्वारा कहना सो पूरा कैसे कहा जा सकता है ? इसलिये हे भाई ! तू अपनी ज्ञान सामर्थ्य के द्वारा अपने स्वभाव को समझ। यदि तू

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वयं समझे तो अपने स्वभाव का पार पाये। एक ही समय में अनादि संसार का नाश करके जिसके बल से परम पवित्र परमात्म दशा प्रगट होती है ऐसे भगवान् आत्मा के स्वभाव की महिमा को हम कहां तक कहें! हे भव्य जीवो! तुम स्वयं स्वभाव को समझो। ४३.

अब ग्रंथकार इस संवाद की सुंदरता को बतलाते हैं और यह भी बतलाते हैं कि इस संवाद से ज्ञानी और अज्ञानीको किस प्रकार का अभिप्राय होगा।—

उपादान अरु निमित्त को सरस बन्यौ संवाद।
समदृष्टि को सरल है मूरख को बकवाद ॥४४॥

अर्थः—उपादान और निमित्त का यह सुंदर संवाद बना है, यह सम्यग्दृष्टि के लिये सरल है और मूर्ख (मिथ्यादृष्टि) के लिये बकवाद मालूम होगी।

उपादान निमित्त के सच्चे स्वरूप को बतानेवाला आत्मा के सहज स्वतंत्र स्वभाव का यह वर्णन बहुत ही अच्छा है। जो जीव वस्तु के स्वाधीन स्वरूप को समझते हैं उन सच्ची दृष्टि वाले जीवों के लिये तो वह सुगम है वे ऐसी वस्तु की स्वतंत्रता को समझ कर आनंद करेंगे किंतु जिसे वस्तु की स्वतंत्रता की प्रतीति नहीं है और जो आत्मा को पराधीन मानता है उस मूर्ख अज्ञानी को तो यह बाद केवल बकवाद मालूम होगी वह वस्तु के स्वतंत्र स्वभाव की महिमा को नहीं जान सकता। ज्ञानी वस्तु को भिन्न २ स्वभाव से देखते हैं किंतु अज्ञानी संयोग बुद्धि से देखते हैं, इसलिये वह संयोग से कार्य होता है इस प्रकार मिथ्या मानते हैं। परंतु इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बात को ज्ञानी ही यथार्थ रीत्या जानते हैं कि वस्तु पर से भिन्न असंयोगी है और उसका कार्य भी स्वतंत्र अपनी शक्ति से ही होता है ! अज्ञानी को तो ऐसा लगेगा कि भला यह किस की बात है ? भला, क्या आत्मा को कोइ सहायता नहीं कर सकता ? किन्तु भाई ! यह बात तेरे ही स्वरूप की है। निज स्वरूप की प्रतीति के विना अनादि काल से दुःख में परिभ्रमण कर रहा है तेरा यह परिभ्रमण कैसे दूर हो और सच्चा सुख प्रगट होकर मुक्ति कैसे हो ? यह बताया जाता है। संयोग बुद्धि से पर पदार्थों को सहायक मानकर तू अनादि काल से परिभ्रमण कर रहा है अब तूझे तेरा पर से भिन्न स्वाधीन स्वरूप बतलाकर ज्ञानीजन उस विपरीत मान्यता को छोड़ने का उपदेश देते है।

ज्ञानीजन तुझे कुछ देते नहीं हैं, तू ही अपना तारनहार है, तेरी असमझ से ही तेरा बिगाड़ है और सच्ची समझ से ही तेरा सुधार है। यदि जीव अपनी इस स्वाधीनता को समझ ले तो उसे अपनी महिमा ज्ञात हो जाय किंतु जिसे अपनी स्वाधीनता समझ में नहीं आती उसे यह संवाद केवल बकवाद रूप मालुम होगा। जो जिसकी महिमा को जानता है वह तत्संबंधी बात को बड़े ही चाह से सुनता है परंतु जिसकी महिमा को नहीं जानता है उसकी बात नहीं रूचती इस संबंध मे यहां एक दृष्टांत दिया जाता है:—

पहले जमाने में जब बेलदार लोग सारे दिन मजदूरी करके घर आते और सब एकत्रित होकर बैठते तब उस समय उनका पुरोहित उन्हें उनके बाप दादाओं की पुरानी कथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुनाता हुआ कहने लगता कि तुम्हारी चौथी पेढ़ी का बाप तो बहुत बड़ा राज्याधिकारी था। बेलदार लोग तो सारे दिन मजदूरी करने से थके होते थे इसलिये जब पुरोहित उनके बाप दादाओं की बात करता तब वे झोका खाने लगते और पुरोहित से कहने लगते कि "हां, बापु, कहते जाइये" जब बेलदार लोग सुनने पर ध्यान नहीं देते पुरोहित कहता कि अरे जरा सुनो तो, मैं तुम्हारे बापदादाओं के बड़प्पन की बात कह रहा हूं तब बेलदार लोग कहते कि 'हां महाराज! कहते जाइये अर्थात् आप तो अपनी बात कहते जाइये तब पुरोहित कहता कि अरे भाई यह तो तुम्हें सुनाने के लिये कह रहा हूं मुझे तो सब मालूम ही है।

इसीप्रकार यहां पर संसार की थकान से थके हुये जीवों को ज्ञानी गुरु उनके स्वभाव की अपूर्व महिमा बतलाते हैं, परंतु जिसे स्वभाव की महिमा की खबर नहीं है और स्वभाव के महिमा की रुचि नहीं है उन बेलदार जैसे जीवों को स्वभाव की महिमा सुनने की उमंग नहीं होती। अर्थात् उनके लिये क्या तो उपादान और क्या निमित्त और क्या वस्तु की स्वतंत्रता यह सब बकवाद सा ही मालूम होता है। वे सब आत्मा की परवाह न करनेवाले बेलदारों की तरह संसार के मजदूर हैं। ज्ञानी कहते हैं कि हे भाई! तेरा स्वभाव क्या है? विकार क्या है? और वह विकार कैसे दूर हो सकता है? यह तुझे समझाते हैं। इसलिये तू अपने स्वभाव की महिमा को जानकर विवेक पूर्वक समझ, तो तेरा संसार परिभ्रमण का दुःख दूर हो जायगा और तुझे शांति प्राप्त होगी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह तेरे ही सुख के लिये कहा जा रहा है और तेरे ही स्वभाव की महिमा बतलाई जा रही है, इसलिये तू ठीक निर्णय करके समझ। जो जीव जिज्ञासु है उसे श्री गुरु की ऐसी बात सुनकर अवश्य ही स्वभाव की महिमा प्रगट होती है और वह बराबर निर्णय करके अवश्य समझ लेता है।

जिज्ञासु जीवों को इस उपादान निमित्त के स्वरूप को समझने में दुर्लक्ष्य नहीं करना चाहिये। इसमें महान् सिद्धांत निहित है। इसे ठीक समझकर इसका निर्णय करना चाहिये उपादान निमित्त की स्वतंत्रता का निर्णय किये बिना कदापि सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं होता और बिना सम्यग्दर्शन के धर्म नहीं होता। ४४.

अब अंतमें ग्रंथकार कहते हैं कि जो आत्मा के गुण को पहचानता है वही इस संवाद के रहस्य को जानता है—

जो जानै गुण ब्रह्म के सो जानै यह भेद।
साख जिनागम सो मिलै तो मत कीज्यो खेद ॥४५॥

अर्थः—जो जीव आत्मा के गुण को [स्वभाव को] जानते है वे इस [उपादान निमित्त के संवाद के] रहस्य को जानते हैं उपादान निमित्त के इस स्वरूप की साक्षी श्री जिनागम से मिलती है इसलिये इस संबंध में खेद नहीं करना चाहिये—शंका नहीं करना चाहिये।

उपादान और निमित्त दोनों पदार्थ त्रिकाल हैं, दोनों में से एक भी अभावरूप नहीं है। सिद्धदशा में भी आकाश इत्यादि निमित्त है। अरे! ज्ञान की अपेक्षा से समस्त लोकालोक निमित्त है जगत् में स्व और पर पदार्थ हैं और ज्ञान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का स्वभाव स्व-पर प्रकाशक ज्ञायक है इसलिये यदि ज्ञान स्वपर को—भीन्न भीन्न और स्वतंत्र न जाने तो वह मिथ्याज्ञान है, इसलिये स्व और पर को जैसा का तैसा जानना चाहिये। उपादान को स्व के रूपमें और निमित्त को पर के रूपमें जानना ठीक है। दोनों को जो जैसे हैं उन्हें उनके गुणों के द्वारा जानकर अपने उपादान स्वभाव को पहचानकर निरन्तर अपना शुद्ध उपादान का आलंबन (-आश्रय) करना चाहिये।

(१) उपादान निमित्त को जानलेना चाहिये किंतु यह नहीं समझना चाहिये कि निमित्त के कारण उपादान में कोई कार्य होता है अथवा निमित्त उपादान का कोई कार्य कर सकता है।

(२) मात्र उपादान से ही कार्य होता है, निमित्त कुछ नहीं करता इसलिये निमित्त कुछ है ही नहीं—यह भी नहीं मानना चाहिये।

(३) निमित्त को जानना तो चाहिये किन्तु वह उपादान से भिन्न पदार्थ है इसलिये वह उपादान में किसी भी प्रकार की सहायता अथवा असर नहीं कर सकता, इस प्रकार समझना सो सम्यग्ज्ञान है। यदि निमित्त की उपस्थिति के कारण कार्य का होना माने तो वह मिथ्याज्ञान है।

इस प्रकार इस संवाद के द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि उपादान वस्तु की निज शक्ति है और पर संयोग निमित्त है। निमित्त जीव का [उपादान का] कुछ भी कार्य नहीं करता किन्तु उपादान स्वयं ही अपना कार्य करता है। सारे संवाद में कहीं भी यह बात स्वीकार नहीं की गई है कि 'निमित्त से कार्य होता है' विपरीतदशा में विकार भी जीव स्वयं ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करता है, निमित्त विकार नहीं कराता, परंतु इस संवाद में मुख्यता औचित्य की बात लीगई है। सम्यग्दर्शन से सिद्ध दशातक जीव को ही शक्ति से कार्य होता है, यह सिद्ध किया गया है, किंतु निमित्त की बलवता कहीं भी नहीं मानी गई।

इससे यदि कोई जीव अपनी नासमझी के कारण यह मान बैठे कि यह तो एकांत होगया, सर्वत्र उपादान से ही कार्य हो और निमित्त से कहीं भी न हो इस में अनेकांतपन कहां है? तो ग्रंथकार कहते हैं कि इस मे स्वतंत्र वस्तु स्वभाव सिद्ध किया है और निमित्त का पक्ष नहीं किया [निमित्त का यथार्थ ज्ञान है परंतु उसका पक्ष नहीं है उस ओर लक्ष्य का खिचाव नहीं है] इसलिये खेद नहीं करना चाहिये किंतु उत्साह पूर्वक समझ कर इस बात का स्वीकार करना चाहिये; क्योंकि इस बात की साख श्री जिनागम से मिलती है।

श्री जिनागम वस्तु को सदा स्वतंत्र बतलाता है। वस्तु स्वरूप ही स्वतंत्र है। जिनेन्द्रदेव का प्रत्येक वचन पुरुषार्थ की जागृति की वृद्धि के लिये ही है। यदि जिनेन्द्रदेव के एक भी वचन में से पुरुषार्थ को गौण करने का आशय निकाला जाय तो मानना चाहिये कि वह जीव जिनेन्द्रदेव के उपदेश को समझा ही नहीं है। निमित्तों का और कर्मों का ज्ञान पुरुषार्थ में अटक जाने के लिये नहीं कहा है किंतु निमित्तरूप पर वस्तुएं हैं और जीव के परिणाम भी उसके पक्ष से अनेक प्रकार विकारी होते हैं यह जानकर अपने निज परिणाम की संभाल करने के लिये निमित्त नैमित्तिक संबंध का ज्ञान कराया है। वह ज्ञान सत्य पुरुषार्थ की वृद्धि के लिये ही है, किंतु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो जीव यह कहता है कि 'तीव्र कर्मोदय आकार मुझे हैरान करेगा तो मेरा पुरुषार्थ नहीं चल सकेगा' उस जीव को स्वयं पुरुषार्थ नहीं करना है इसीलिये वह पुरुषार्थ हीनता की बातें करता है। अरे भाई! पहले जब तुझे कर्मों की खबर नहीं थी तब तू ऐसा तर्क नहीं करता था और अब कर्मों का ज्ञान होने पर तू पुरुषार्थ की शंका करता है, तो क्या अब निमित्त का यथार्थ ज्ञान होने से तुझे हानि होगी इसलिये हे जीव निमित्त कर्मों की ओर का लक्ष्य छोड़कर तू अपने ज्ञान को उपादान के लक्ष्य में लगाकर सच्चा पुरुषार्थ कर। तू जितना पुरुषार्थ करेगा उतना काम आयेगा तेरे पुरुषार्थ को रोकने के लिये विश्व में कोई समर्थ नहीं है। जगत् में सब कुछ स्वतंत्र है। रजकण से लेकर सिध्धतक सभी जड चेतन पदार्थ स्वतंत्र हैं। एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ के साथ किंचित् मात्र भी संबंध नहीं हैं तब फिर किसीभी निमित्तरूप पदार्थ हों वे उपादान का क्या कर सकते हैं? उपादान स्वयं जिस प्रकार परिणमन करता है उस प्रकार पर पदार्थ में निमित्तारोप होता है निमित्त तो आरोप मात्र कारण है, उसकी उपादान में तीनोंकाल नास्ति है। और अस्ति नास्तिरूप ऐसा अनेकांत वस्तु स्वरूप है। परंतु एक पदार्थ दूसरे पदार्थ में कुछ कर सकता है इस प्रकार की मान्यता से पदार्थों की स्वतंत्रता नहीं रहती और एकांत आजाता है।

इसलिये उपादान निमित्त के संवाद के द्वारा जो वस्तु स्वरूप समझाया गया है उसे जानकर हे भव्य जीव! तुम खेद का परित्याग करो। पर द्रव्य की सहायता आवश्यक है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस मान्यता का परित्याग करो। अपनी आत्मा को पराधीन मानना ही सबसे बड़ा खेद है। अब आत्मा के स्वाधीन स्वरूप को जानकर उस खेद का परित्याग करो; क्योंकि श्री जिनागम का प्रत्येक वचन वस्तु स्वरूप को स्वतंत्र घोषित करता है और जीव को सत्य पुरुषार्थ करने के लिये प्रेरित करता है।

यह बात विशेष ध्यान में रखना चाहिये कि निमित्त वस्तु है तो अवश्य। सच्चे देव, शास्त्र, गुरु को न पहचाने और कहे कि निमित्त का क्या काम है ? उपादान स्वतंत्र है इस-प्रकार उपादान को जाने बिना यदि स्वच्छंद होकर प्रवृत्ति करे तो इससे उसका अज्ञान ही दृढ होगा ऐसे जीव के धर्म तो हो ही नहीं सकता, उलटा शुभराग को छोड़कर अशुभराग में प्रवृत्ति करेगा। श्रीमद् राजचंद्रजीने आत्मसिद्धि में कहा है कि—

उपादाननुं नाम लइ ये जे तजे निमित्त।
पामे नहि परमार्थने रहे भ्रांतिमां स्थित॥
उपादान का नाम ले यदि यह तजे निमित्त।
पाये नहिं परमार्थ को रहे भ्रांति में स्थित॥

ध्यान रहे कि यहां उपादान का मात्र नाम लेकर जो निमित्त का निषेध करता है ऐसे जीव की बात है किंतु जो उपादान के भाव को समझ कर निमित्त का लक्ष्य छोड़ देते हैं वे सिद्ध स्वरूप को प्राप्त होते हैं। इस गाथा को उलट कर कहा जाय तो—

उपादान नो भाव लई ये जे तजे निमित्त।
पामे ते सिद्धत्वने रहे स्वरूपमां स्थित॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपादान का भाव लें यदि यह तजे निमित्त ।
पाये वह सिद्धत्वको रहे स्वरूप में स्थित ॥

अज्ञानी जीव सत् निमित्त को नहीं जानता और उपादान को भी नहीं जानता, वह जीव तो अज्ञानी ही रहता है किंतु जो जीव अपने उपादान स्वभाव के स्वतंत्र भावों को पहिचान कर उस स्वभाव की एकाग्रता के द्वारा निमित्त के लक्ष्य को छोड देते हैं वे जीव अपने स्वरूप में स्थित रहते हैं उनकी भ्रांति का और राग का नाश हो जाता है और वे केवलज्ञान को प्राप्त कर मुक्त हो जाते हैं ।

जो जीव उपादान निमित्त के स्वरूप को नही जानता और मात्र उपादान की बातें करता है तथा सच्चे निमित्त को जानता ही नहीं वह पापी है । यहां पर यह आशय नहीं है कि 'निमित्त से कोई कार्य होता है' किंतु यहां अपने भाव को समझने की बात है जब जीव के सत् निमित्त के समागम का भाव अंतर से नहीं बैठा और स्त्री, पैसा इत्यादि के समागम का भाव जम गया तब उसे धर्म के भाव का अनादर और संसार की ओर के विपरीत भाव का आदर हो जाता है । अपने में वर्तमान तीव्र राग है तथापि वह उस राग का विवेक नहीं करता, (शुभाशुभ के बीच व्यवहार से भी भेद नहीं करता) वह जीव विपरीत भाव का ही सेवन करता रहता है ।

वह विपरीत भाव किसका ? क्या तू वीतराग हो गया है ? यदि तुझे विकल्प और निमित्त का लक्ष्य ही न होता तो तुझे शुभ निमित्त के भी लक्ष्य का प्रयोजन न होता किंतु जब विकल्प और निमित्त का लक्ष्य है तब तो उसका अवश्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विवेक करना चाहिये। इस से यह नहीं समझ लेना चाहिये कि निमित्त से कोई हानि लाभ होता है परंतु अपने भाव का उत्तरदायित्व स्वयं स्वीकार करना होगा। जो अपनी वर्तमान पर्याय के भाव को और उसके योग्य निमित्तों को नहीं पहचानता वह त्रैकालिक स्वभाव को कैसे जानेगा ?

जीव या तो निमित्त से कार्य होता है यह मानकर पुरुषार्थ हीन होता है। अथवा निमित्त का और स्व पर्याय का विवेक भूल कर स्वच्छंद हो जाता है यह दोनों विपरीत भाव हैं। वे विपरीत भाव ही जीव को उपादान की स्वतंत्रता नहीं समझने देते। यदि जीव विपरीत भाव को दूर करके सत् को समझे तो उसे मोक्षमार्ग होता है। जब जीव अपने भाव से सत् को समझे तब सत् निमित्त होते ही हैं क्योंकि जिसे सत् स्वभाव के प्रति बहुमान है उसे सत् निमित्तों की ओर का लक्ष्य और बहुमान हो ही जाता है। जिसे सच्चे देव, शास्त्र, गुरु के प्रति अनादर है उसे मानों अपने ही सत् स्वरूप के प्रति अनादर है और सत् स्वरूप का अनादर ही निगोद भाव है, उस भाव का फल निगोददशा है।

इसलिये जिज्ञासुओं को सभी पहलुओं से उपादान निमित्तको जो जैसे हैं उस प्रकार ठीक जानकर निश्चय करना चाहिये। यह निश्चय करने पर पराधीनता की मान्यता का खेद दूर हो जाता है और स्वाधीनता का सच्चा सुख प्रगट होता है। ४५.

ग्रंथ कर्ता का नाम और स्थान

नगर आगरा अग्र है जैनी जन को वास,
तिह थानक रचना करी 'भैया' स्वमतिप्रकाश ॥४६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थः—आगरा शहर अग्रगण्य नगरों में से है जिसमें जैन लोगों का (अच्छी संख्या में) निवास है। वहां पर भैया भगवतीदास ने अपनी बुद्धि के प्रकाशानुसार यह रचना की है अथवा अपने ज्ञान के प्रकाश के लिये यह रचना की है।

उपादान निमित्त के बीच के बटवारे के कथन का यह जो अधिकार कहा गया हैं वह सर्वज्ञदेव की परंपरा से कथित तत्त्वका सार है और उस में से अपनी बुद्धि के अनुसार जो मैं समझ सका हूं वही मैंने इस संवाद में प्रगट किया है।

रचना काल

संवत् विक्रम भूप को सत्तरहसैं पंचास।
फाल्गुन पहले पक्ष में दशों दिशा परकाश ॥४७॥

अर्थः—विक्रम संवत् १७५० के फाल्गुन मास के प्रथम पक्ष में इस संवाद की रचना की गई है।

जिस प्रकार पूर्णिमा के चंद्रमा का प्रकाश दशों दिशाओं में फैल जाता है उसी प्रकार यह उपादान निमित्त संबंधी तत्त्व चर्चा दशों दिशाओं में तत्त्व का प्रकाश करेगी-यत्र तत्र इसी की चर्चा होगी। अर्थात् यह तत्त्वज्ञान सर्वत्र प्रकाशित होगा। इस प्रकार अंतिम मंगल के साथ यह अधिकार पूर्ण होता है।

卐

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मूल में भूल

[दूसरा विभाग]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्वद्वर्य पंडित बनारसीदासजी कृत
उपादान निमित्त दोहा

गुरु उपदेश निमित्त बिन उपादान बलहीन ।
ज्यों नर दूजे पांव बिन चलवे को आधीन ॥१॥

हो जाने था एक ही उपादान सों काज ।
थकै सहाई पौन बिन पानी मांहि जहाज ॥२॥

ज्ञान नैन किरिया चरण दोऊ शिवमग धार ।
उपादान निश्चय जहां तहां निमित्त व्यवहार ॥३॥

उपादान निजगुण जहां तहां निमित्त पर होय ।
भेद ज्ञान परमाण विधि विरला बुझे कोय ॥४॥

उपादान बल जहं तहां नहिं निमित्त को दाव ।
एक चक्र सों रथ चले रवि को यहै स्वभाव ॥५॥

सबै वस्तु असहाय जहां तहां निमित्त है कौन ।
ज्यों जहाज परवाह में तिरै सहज विन पौन ॥६॥

उपादान विधि निरवचन है निमित्त उपदेश ।
वसे जु जैसे देश में धरे सु तैसे भेष ॥७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

विद्वद्वर्य पंडित बनारसीदासजी कृत
उपादान-निमित्त दोहा
पर किये गये
परम पूज्य श्री कानजी स्वामी के प्रवचन

वस्तु का स्वभाव स्वतंत्र है, प्रत्येक वस्तु अपने स्वतंत्र स्वभाव से ही अपना कार्य कर रही है। उपादान और निमित्त दोनों स्वतंत्र भिन्न वस्तुऐं हैं। जब उपादान अपना कार्य करता है तब निमित्त मात्र होता है। इतना ही उपादान निमित्त का मेल है, उसकी जगह किंचित् मात्र भी कर्ता कर्म संबंध मानना सो अज्ञान है। पं. बनारसीदासजी ने अपने दोहो में संक्षेप में उपादान निमित्त का स्वरूप बहुत ही सुंदर रूप में बताया है।

शिष्य का प्रश्न

गुरु उपदेश निमित्त बिन उपादान बलहीन।
ज्यों नर दूजे पांव बिन चलवे को आधीन ॥१॥
हो जाने था एक ही उपादान सों काज।
थकै सहाई पौन बिन पानी मांहि जहाज ॥२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थः—जैसे आदमी दूसरे पैर के विना नहीं चल सकता उसी प्रकार उपादान (आत्मा स्वयं) भी सद्गुरु के उपदेश के निमित्त के बिना असमर्थ है। जो यह मानते हैं कि मात्र उपादान से ही काम हो जाता हैं वे ठीक नहीं हैं (जैसे पानी में पवन की सहायता के बिना जहाज थक जाता है उसी प्रकार निमित्त की सहायता के बिना उपादान अकेला कार्य नहीं कर सकता) इस प्रकार अज्ञानियों की मान्यता है जो कि ठीक नहीं हैं।

उपादान निमित्त के स्वरूप की जिज्ञासा वाला शिष्य यह बात पूछता है। निमित्त और उपादान की बात को कुछ ध्यान में रखकर वह पूछता है कि उपादान क्या है और निमित्त क्या है? किन्तु जिसे कुछ खबर ही न हो और जिसे जिज्ञासा ही न होती हो तो वह क्या पूछेगा?

जिसने निमित्त उपादान की बात सुनी है किंतु अभी निर्णय नहीं किया ऐसा निमित्त का पक्षवाला आदमी पूछता है कि—विना निमित्त के उपादान अपना कार्य करने में बल-हीन है। यदि निमित्त हो तो उपादान काम कर सकता है, गुरु हो तो शिष्य को ज्ञान होता है, सूर्य हो तो कमल खिलता है, दो पैर हों तो आदमी चल सकता है, कहीं एक पैर से नहीं चला जाता। देखिये अकेला एक पैर नहीं काम कर सकता। जब एक पैर को दूसरे पैर की सहायता मिलती है तब चलने का लाभ होता है, इसी प्रकार अकेला उपादान काम नहीं कर सकता किन्तु जब उपादान और निमित्त दोनों एकत्रित होते हैं तब कार्य होता है। उपादान का अर्थ है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मा की शक्ति। जीव को सम्यग्दर्शन प्रगट करने में आत्मा की सच्ची समझ-स्वभाव की प्रतीति का होना सो उपादान है और गुरु का उपदेश निमित्त है। जब उपादान स्वयं कार्य रूप परिणमन करता है तब जो बाह्य संयोग होता है वह निमित्त है, इस प्रकार उपादान निमित्त की व्यवस्था है।

अज्ञानियों का यह तर्क है कि यदि अनुकूल निमित्त नहीं मिलता तो उपादान का काम नहीं बनता और, वे तत्संबंधी दृष्टांत भी देते हैं। यह दोहे पं. बनारसीदासजी द्वारा रचे गये हैं। उन अज्ञानियों की ओर से स्वयं प्रश्न उपस्थित करके उनका उत्तर दिया है। ज्ञानीजन जानते हैं कि अज्ञानियों के क्या क्या तर्क हो सकते हैं। यह दोहे अत्यंत उच्च कोटि के हैं। इन में वस्तु स्वभाव का बल बताया गया है।

अज्ञानी यह मानता है कि कोई निमित्त हो तो उपादान का काम होता है और ज्ञानी यह जानता है कि मात्र वस्तु के स्वभाव से ही कार्य होता है, उसमें निमित्त की न तो कोई सहायता होती है और न कोई असर होता है किन्तु उस समय जो बाह्य संयोग उपस्थित होते हैं उन्हीं को निमित्त कह दिया जाता है, कार्य तो अकेला उपादान स्वयं ही करता है।

शिष्य का प्रश्न—आप कहते हैं कि मात्र उपादान से ही काम होता है, यदि यह सच हो तो विना हवा जहाज क्यों नहीं चलता? उपादान के होते हुये भी हवा के निमित्त के विना क्या जहाज चल सकता है? विना हवा के अच्छे से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अच्छा जहाज भी रुककर रह जाता है, इसी प्रकार सद्गुरु के उपदेश के विना आत्मारूपी जहाज मोक्षमार्ग की ओर नहीं चल सकता। सद्गुरु का निमित्त हो तो आत्मारूपी जहाज सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी मुक्ति के मार्ग पर चल सकता है। इससे सिद्ध हुआ कि निमित्त हो तो उपादान काम करता है और निमित्त न हो तो उपादान बलहीन हो जाता है, अकेला आत्मा क्या कर सकता है? यदि सद्गुरु हों तो मार्ग बतायें और आत्मा उस मार्ग पर चले। इस प्रकार निमित्त उपादान एकत्रित हों तो आत्मा मोक्षमार्ग में चलता है।

निमित्त के उपरोक्त तर्क का उपादान की ओर से उत्तर देते हुये कहा है कि—

ज्ञान नैन किरिया चरण दोऊ शिवमग धार।
उपादान निश्चय जहां तहां निमित्त व्यवहार ॥३॥

अर्थः—सम्यग्दर्शनपूर्वक ज्ञानरूपी जो आंखें और वह ज्ञानमें स्थिरता स्वरूप सम्यक् चारित्र की क्रिया रूपी जो चरण वह दोनों मोक्षमार्ग के धारण करते हैं। जहां ऐसा निश्चय उपादान [मोक्षमार्ग] होता है वहां निमित्तरूप व्यवहार होता ही है।

सम्यग्दर्शनपूर्वक ज्ञान और ज्ञान में स्थिरतारूप सम्यग्चारित्र की क्रिया यह दोनों मोक्षमार्ग को धारण करते हैं। जहां उपादान रूप निश्चय होता है वहां निमित्त रूप व्यवहार होता ही है। अज्ञानी मानते हैं कि सद्गुरु का निमित्त और आत्मा का उपादान मिलकर मोक्षमार्ग है किंतु ज्ञानी जानते हैं कि 'ज्ञान नयन क्रिया चरन' अर्थात् ज्ञान रूपी नेत्र मोक्ष-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मार्ग को दिखाते हैं और चारित्र उसमें स्थिर होता है। इस प्रकार ज्ञान और चारित्र दोनों मिलकर मोक्षमार्ग है (ज्ञान के कहने पर उसमें श्रद्धा भी आजाती है) जहां ऐसा निश्चय मोक्षमार्ग होता है वहां सद्गुरु का निमित्तरूप व्यवहार होता ही है किंतु ज्ञान-चारित्र रूप मोक्षमार्ग तो अकेले उपादान से ही होता है।

आत्मा देहादि पर संयोगों से भिन्न है, दया इत्यादि की शुभ भावना और हिंसा इत्यादि की अशुभ भावना दोनों विकार हैं, आत्मा के स्वरूप नहीं है। इस प्रकार पर से और विकार से भिन्न आत्मा के शुद्ध स्वरूप की श्रद्धापूर्वक ज्ञान आत्मा की आंख है और पुण्य-पाप के विकार से रहित स्थिरता रूप क्रिया चारित्र है; इस प्रकार ज्ञान और चारित्र दोनों मोक्ष के उपाय हैं। पहले ज्ञानरूपी आंखों से मोक्ष के मार्ग को जाने बिना वह मोक्षमार्ग में कैसे चलेगा? आत्मा के स्वभाव को जाने बिना पुण्य में मोक्षमार्ग मानकर अज्ञान भाव से संसार में ही चक्कर लगायेगा। पहले शुद्धात्मा के ज्ञानपूर्वक मोक्षमार्ग को जाने और फिर उसमें स्थिर हो तो मोक्ष प्राप्त होता है। जीव अपने उपादान से जब ऐसे मोक्षमार्ग को प्रगट करता है तब सद्गुरु निमित्तरूप होते हैं—यह व्यवहार है।

उपादान अर्थात् निश्चय और निमित्त अर्थात् व्यवहार। उपादान तो स्व है और निमित्त पर है अर्थात् स्व निश्चय है और पर व्यवहार। जो द्रव्य स्वयं कार्य रूप होता है वह द्रव्य कार्य में निश्चय है और जब स्वयं कार्यरूप हो रहा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो तब अनुकूल पर वस्तु के ऊपर 'निमित्त' का आरोप करना सो व्यवहार है। इस प्रकार निमित्त केवल उपचार मात्र है। इस संबंध में श्री पूज्यपाद स्वामीने इष्टोपदेश में कहा है कि—

नाज्ञो विज्ञत्वमायाति विज्ञोनाज्ञत्वमृच्छति ।
निमित्तमात्रमन्यस्तु गतेर्धर्मास्तिकायवत् ॥३५॥

अर्थः—अज्ञानी जीव (पर सें ज्ञानी नहीं हो सकता, इसी प्रकार ज्ञानी जीव (पर के द्वारा) अज्ञानी नहीं हो सकता, दूसरे तो निमित्त मात्र होते हैं। जैसे अपनी शक्ति से चलते हुये जीव और पुद्गलों के लिये धर्मास्तिकाय निमित्तमात्र है उसी-प्रकार मनुष्य स्वयं ज्ञानी अथवा अज्ञानी होता है उसमें गुरु इत्यादि निमित्तमात्र है।

'धर्मास्ति कायवत्' अर्थात् सभी निमित्त धर्मास्तिकाय के समान हैं, इस एक वाक्य में ही निमित्त की उपादान में सर्वथा अकिंचित्करता बता दी गई है।

जैसे धर्मास्तिकाय सदा सर्वत्र विद्यमान है किंतु जो पदार्थ स्वयं गतिरूप परिणमन करते हैं उनके लिये धर्मास्तिकाय पर निमित्त का आरोप आता है और जो पदार्थ-स्थितिरूप होते उनके लिये धर्मास्तिकाय पर निमित्त का आरोप नहीं होता। इस प्रकार यदि पदार्थ गतिरूप परिणमन करे तो धर्मास्तिकाय को निमित्त कहा जा सकता है और यदि गति न करे तो निमित्त नहीं कहा जाता। धर्मास्तिकाय तो दोनों में मौजूद है वह कहीं पदार्थों को चलाता नहीं है किंतु यदि पदार्थ गति करता है तो मात्र आरोप से उसे निमित्त कहा जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी प्रकार समस्त निमित्तों को धर्मास्तिकाय की तरह ही समझना चाहिये।

कमल खिलता है उस में सूर्य निमित्त है अर्थात् यदि कमल स्वयं खिले तो सूर्य पर निमित्तारोप आता है और यदि कमल न खिले तो सूर्य पर निमित्तारोप नहीं आता। कमल के कार्य में सूर्य ने कुछ भी नहीं किया वह तो धर्मास्तिकाय की तरह मात्र उपस्थित होता है।

यथार्थ ज्ञान में गुरु का निमित्त है अर्थात् यदि जीव स्वयं यथार्थ वस्तु को समझ ले तो गुरु पर निमित्त का आरोप आता है और यदि जीव स्वयं यथार्थ को नहीं समझता तो गुरु को निमित्त नहीं कहा जाता। गुरु किसी के ज्ञान में कुछ करता नहीं है, वह तो मात्र धर्मास्तिकाय की तरह उपस्थित रहता है।

मिट्टी से घड़ा बनता है, उस में कुम्हार निमित्त है अर्थात् मिट्टी स्वयं घडे के रूप में परिणमित हो तो कुम्हार में निमित्त का आरोप होता है और यदि मिट्टी घडे के रूप में परिणमित नहीं होती तो कुम्हार को निमित नहीं कहलाता। मिट्टी के कार्य में कुम्हार कुछ नहीं करता, कुम्हार तो धर्मास्तिकाय की तरह उपस्थित मात्र है। इस प्रकार जहां जहां पर वस्तु को निमित्त कारण कहा जाता है वहां सर्वत्र "धर्मास्तिकायवत्" समझना चाहिये।

पदार्थ का स्वयं कार्यरूप में परिणमित होना सो निश्चय है और अन्य पदार्थ में कारण पनेका आरोप करके उसे निमित्त कहना सो व्यवहार है। जहां निश्चय होता है वहां व्यवहार होता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही है। अर्थात् जहां उपादान स्वयं कार्य रूप में परिणमित होता है वहां निमित्तरूप पर वस्तु की उपस्थिति अवश्य होती है। उपादान ने अपनी शक्ति से कार्य किया है ऐसा ज्ञान करना सो निश्चयनय है और उस समय उपस्थित रहने वाली पर वस्तु का ज्ञान करना सो व्यवहारनय है। ३.

अर्थः—सम्यग्दर्शन-ज्ञानरूप नेत्र और ज्ञानमें चरण अर्थात् लीनतारूप क्रिया दोनों मिलकर मोक्षमार्ग जानो। उपादानरूप निश्चय कारण जहाँ हो वहाँ निमित्तरूप व्यवहार कारण होता ही है निमित्तकी राह देखकर रूकना पडे ऐसी पराधीनता नहीं है ॥३॥

(१)उपादान वह निश्चय अर्थात् सच्चा कारण है, निमित्त तो मात्र व्यवहार अर्थात् उपचार कारण है, सच्चा कारण नहीं हैं, इसलिये तो उसे अकारणवत् कहा है। और उसे उपचार (-आरोप) कारण क्यों कहा कि वह उपादान का कुछ कार्य करते कराते नहीं, तो भी कार्यके समय उनकी उपस्थिति के कारण उसे उपचारमात्र कारण कहा है। (२) सम्यग्ज्ञान और ज्ञानमें लीनताको मोक्षमार्ग जानो ऐसा कहा उसीमें शरीराश्रित उपदेश उपवासादिक क्रिया और शुभरागरूप व्यवहार को मोक्षमार्ग न जानो वह बात आजाती है।

प्रथम प्रश्नका समाधान

उपादान निजगुण जहां तहां निमित्त पर होय।
भेद ज्ञान परमाण विधि विरला बुझे कोय ॥४॥

अर्थः—जहां निजशक्तिरूप उपादान तैयार हो वहां पर निमित्त होते ही है, ऐसी भेदज्ञान प्रमाणकी विधि (-व्यवस्था)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है, यह सिद्धांत कोइ विरला ही समझता है ॥४॥

जहां उपादानकी योग्यता हो वहां नियमसे निमित्त होता है, निमित्तकी राह देखना पडे ऐसा नहीं है; और निमित्तको हम जुटा सकते ऐसा भी नहीं है। निमित्तकी राह देखनी पडती है या उसे मैं ला सकता हूं ऐसी मान्यता-परपदार्थ में अभेद बुद्धि अर्थात् अज्ञान सूचक है। निमित्त और उपादान दोनों असहायरूप है यह तो मर्यादा है ॥४॥

उपादान अपनी शक्ति से कार्य करता है तब वहां निमित्त होता है किन्तु वह उपादान में कुछ भी कर नहीं सकता यह भेद विज्ञान की बात है। स्व और पर द्रव्य भिन्न भिन्न हैं, एक का दूसरे में नास्तित्व है तब फिर वह क्या कर सकता है? यदि खरगोश के सींग किसी पर असर कर सकते हों तो निमित्त का असर भी दूसरे पर हो सकता है, किन्तु जैसे खरगोश के सींग का अभाव होने से वह किसी पर असर मानना झूंठ है उसी प्रकार निमित्त का पर द्रव्य में अभाव होने से निमित्त का कोई असर पर द्रव्य में मानना मिथ्यात्व है। इस प्रकार वस्तु स्वभाव का भेदज्ञान किसी विरले सत्य पुरुषार्थी जीव के ही होता है। उपादान निमित्त की स्वतंत्रता को ज्ञानी ही जानते हैं। ज्ञानीजन वस्तु स्वभाव को देखते हैं, इसलिये वे जानते हैं कि प्रत्येक वस्तु की पर्याय उस वस्तु के अपने स्वभाव से होती है। वस्तु स्वभाव में ही अपना कार्य करने की शक्ति है, उसे पर वस्तु के निमित्त की आवश्यकता नहीं होती। अज्ञानी वस्तु स्वभाव को नहीं जानते इसलिये वे संयोग को ही देखते हैं और वस्तु का कार्य स्वतंत्र नहीं मानकर उसे संयोगाधीन-निमित्ताधीन मानते हैं। इसलिये उनके संयोग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की एकत्वबुद्धि दूर नहीं होती और स्वपर भेदज्ञान नहीं होता।

यहांपर उपादान और निमित्त की स्वतंत्रता बतलाकर भेदज्ञान का उपाय बताते हैं। समस्त जगत् के बहुत से जीव उपादान-निमित्त के स्वरूप को समझे बिना उसकी खिचड़ी पकाया करते हैं। निमित्त में कोई विशेषता है, कभी कभी निमित्त का असर होता है, कभी कभी निमित्त की मुख्यता से कार्य होता है, इस प्रकार की तमाम मान्यतायें अज्ञान-मूलक हैं। ४.

उपादान बल जहं तहां नाहि निमित्त को दाव।
एक चक्रसों रथ चलै रवि को यहै स्वभाव ॥५॥

अर्थः—जहां देखो वहां सदा उपादानका ही बल है निमित्त होते है परन्तु निमित्तका कुछ भी दाव (-बल) नहीं है जैसे एक चक्रसे सूर्यका रथ चलता है इस प्रकार प्रत्येक कार्य उपादानकी योग्यता (-सामर्थ्य) से ही होता है, निमित्त उपादान मे कुछ भी कर्ता नहीं है।

जहां प्रत्येक वस्तु अपने अपने स्वभाव से ही कार्य करती है वहां उसके स्वभाव में पर वस्तु क्या कर सकती है? कोई वस्तु अन्य वस्तु के भाव में परिणमन नहीं करती। उपादान स्वयं अपने भाव में परिणमन करता है और निमित्त निमित्त के अपने भाव में परिणमन करता है। अपनी पर्याय का कार्य करने में प्रत्येक वस्तु का उपादान स्वयं ही बलवान है उसमें निमित्त का कोई कार्य नहीं, इसमें दृष्टांत भी प्राकृतिक वस्तु का दिया गया है। सूर्य के रथ को एक ही चक्र होता है, एक चक्र से ही चलने का सूर्य का स्वभाव है; उसी प्रकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक स्ववस्तु से ही कार्य करने का वस्तु का स्वभाव है। अपने उपयोग को स्वभाव की ओर बदलने में जीव स्वयं स्वतंत्र है। इसलिये हे निमित्त के पक्षकार! तुम कहते हो कि 'निमित्त हो तो कार्य हो, और जैसा निमित्त मिलता है उसी के अनुसार उपादान की पर्याय होती है', यह बात असत्य है। स्वभाव में पर निमित्त का कोई कार्य है ही नहीं। यदि वस्तु की कोई भी पर्याय निमित्त के कारण होती हो तो क्या उस वस्तु में उस पर्याय के होने की शक्ति नहीं थी। अनादि अनंत काल की समस्त पर्यायों का सामर्थ्य वस्तु में विद्यमान है और जब कि वस्तु में ही अनादि अनंत पर्यायों की शक्ति है तब उसमें दूसरे ने क्या कर दिया। अनादि अनंत पर्यायों में से यदि एक भी पर्याय पर के कारण अथवा पर की मुख्यता को लेकर होती है यह माना जाय तो कहना होगा कि ऐसा मानने वाले ने वस्तु को ही स्वीकार नहीं किया।

भला निमित्त ने किया कैसे? क्या वस्तु में वह पर्याय नहीं थी और निमित्त ने बाहर से लाकर उसे दे दिया। जिस वस्तु में जो शक्ति न हो वह दूसरे से नहीं दी जा सकती और जो शक्ति वस्तु में होती है उसे दूसरे की सहायता की आवश्यकता नहीं होती ऐसे स्वतंत्र वस्तु स्वभाव को स्वीकार किये बिना स्वतंत्र दशा (सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र) कदापि प्रगट नहीं होगी।

पहले एक तर्क में कहा था कि क्या आदमी दो पैर के बिना चल सकता है? हां, जिसमें चलने की उस प्रकार की शक्ति होती है वह एक पैर से भी चल सकता है। ९६ अंतर्द्वीप के मनुष्यों के एक पैर होता है और वे एक ही पैर से चलते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं इसी प्रकार आत्मा के अंतर स्वभाव की शक्ति से निर्मल दशा प्रगट होती है। निर्मलदशा के प्रगट करने में निमित्त का कोई कार्य नही है, इतना ही नहीं किंतु निमित्त के प्रति लक्ष्य भी नहीं होता। निमित्त के लक्ष्य को छोड़कर मात्र स्वभाव के लक्ष्य से निर्मलदशा प्रगट होती है।

जड़ के सुख दुःख नहीं होता। यहां तो जीव का प्रयोजन है। जीव में 'उपयोग' है उसी से वह अकेला अपने उपयोग को स्व की ओर बदल सकता है। निमित्त की ओर से उपयोग को हटा कर स्वभाव की ओर उपयोग को करने के लिये उपयोग स्वयं अपने से ही बदल सकता है। स्वद्रव्य और अनेक प्रकार के पर द्रव्य एक साथ उपस्थित हैं, उनमें अपने उपयोग को स्वयं जिस ओर ले जाना चाहे उस ओर ले जा सकता है। पर द्रव्यों के होने पर भी उन सब का लक्ष्य छोड़कर उपयोग को स्वद्रव्य की ओर ला सकता है, इस न्याय में उपयोग की स्वतंत्रता बताई है और निमित्ताधीन दृष्टि को उड़ा दिया है। ५.

वस्तु का स्वभाव ही ऐसा है कि एक दूसरे का कुछ नहीं कर सकता इसी को आगे कहते हैं:—

दूसरा प्रश्नका समाधान—

सधै वस्तु असहाय जहां तहां निमित्त है कौन ?
ज्यों जहाज परवाह में तिरै सहज बिन पौन ॥६॥

अर्थ:—प्रत्येक वस्तु स्वतंत्रतासे अपनी अवस्थाको (-कार्यको) प्राप्त करती है वहां निमित्त कौन? जैसे जहाज प्रवाहमें सहज ही पवन विना ही तैरता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीव और पुद्गल द्रव्य शुद्ध या अशुद्ध अवस्थामें स्वतंत्रपनेसे ही अपने परिणामको करते हैं; अज्ञानी जीव भी स्वतंत्रपनेसे निमित्ताधीन परिणमन करता है, कोइ निमित्त उसे आधीन नहीं बना सकता ॥ ६ ॥

इस दोहे में वस्तु स्वभाव को विशेष स्पष्टता से बताया है। 'सवै वस्तु असहाय' अर्थात् सभी वस्तुएं स्वतंत्र हैं एक वस्तु की दूसरी में नास्ति है तब फिर उसमें निमित्त कौन हो सकता है? एक वस्तु में दूसरी वस्तु को निमित्त कहना व्यवहार है—उपचार है। वस्तु स्वभाव पर से भिन्न स्वतः परिपूर्ण है, वह स्वभाव परकी अपेक्षा नहीं रखता और उस स्वभाव का साधन भी असहाय है। निमित्त निमित्त में भले रहे परंतु उपादान के कार्य में निमित्त कौन है? वस्तु के अनंत गुणों में भी एक गुण दूसरे गुण से असहाय-स्वतंत्र है. तब फिर एक वस्तु को दूसरी भिन्न वस्तु के साथ तो कोई संबंध नहीं है। यहां स्वभाय दृष्टि के बलसे कहते हैं कि एक वस्तु में दूसरी वस्तु का निमित्त भी कैसा? निमित्त होता है उसका ज्ञान गौणरूप में है

जैसे वायु की मौजूदगी के बिना जहाज पानी के प्रवाह में चलता है उसी प्रकार आत्मा पर निमित्त के लक्ष्य के बिना और पुण्य पाप के विकार से रहित उपादान के लक्ष्य से स्वभाव में स्थिर हो गया है, उसमें निमित्त कौन है? बाह्य में निमित्त है या नहीं इसका लक्ष्य नहीं है और अंतर में शुक्लध्यान की श्रेणी में चढकर केवलज्ञान प्राप्त करता है एक क्षण में अनंत पुरुषार्थ प्रगट करके केवलज्ञान प्रगट करता है ऐसा असहाय वस्तु स्वभाव है। ऐसे आत्मस्वभाव की प्रतीति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करके उसकी रमणता में स्थिर हो जाने पर बाह्य निमित्त का लक्ष्य नहीं रहता। विकार किसी निमित्त की प्रेरणा से नहीं होती। उपादान स्वयं अपनी पर्याय की योग्यता से विकार करता है तो होता है। सारी वस्तु असहाय है और प्रत्येक पर्याय भी असहाय है।

अहो ! जिसने ऐसा स्वतंत्र वस्तु स्वभाव प्रतीति में लिया है वह अपनी निर्मलता के लिये किसका मुंह देखेगा ऐसी प्रतीति होने पर वह परमुखापेक्षी नहीं रहता, अर्थात् मात्र स्व स्वभाव की दृष्टि और एकाग्रता के बल से विकार का क्षय होकर अल्प कालमें केवलज्ञान प्रगट होता है। ६.

कोई पूछता हैं कि यदि निमित्त कुछ भी नहीं करता और निमित्त आरोप मात्र है तो फिर शास्त्रों में जो बारम्बार निमित्त से उपदेश पाया जाता है उसका क्या कारण है? उस का समाधान करते हुये इस अंतिम दोहे में कहते हैं कि—

उपादान विधि निरवचन है निमित्त उपदेश।
वसे जु जैसे देशमें धरे सु तैसे भेष ॥७॥

अर्थः—उपादानका कथन एक "योग्यता" शब्द द्वारा ही होता है; उपादान अपनी योग्यता से अनेक प्रकार परिणमन करता है तब उपस्थित निमित्त पर भिन्न भिन्न कारणपनेका आरोप (-भेष) आता है इससे निमित्त द्वारा यह कार्य हुआ ऐसा व्यवहारसे कहा जाता है।

उपादान जब जैसे कार्यको करता है तब वैसे कारणपनेका आरोप (-भेष) निमित्तपर आता है जैसे—कोइ वज्रकायवान मनुष्य नर्कगति योग्य मलिन भाव करता है तो वज्रकाय पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नर्कका कारणपनेका आरोप आता है; और यदि जीव मोक्ष-योग्य निर्मलभाव करता है तो उसी निमित्तपर मोक्षकारणपनेका आरोप आता है। इस प्रकार उपादान के कार्यानुसार निमित्तमें कारणपनेका भिन्न भिन्न आरोप दिया जाता है। इससे ऐसा सिद्ध होता है कि निमित्तसे कार्य नहीं होता परन्तु कथन होता है। अतः उपादान सच्चा कारण है, और निमित्त आरोपित कारण है।

प्रत्येक समयका उपादान स्वतंत्र होनेसे वाणी के द्वारा नहीं कहा जा सकता। कथन में भेद आये विना नहीं रहता। कथन में तो निमित्त का ज्ञान कराने के लिये निमित्त के द्वारा कथन करके समझाया जाता है परंतु जो निमित्त के ही कथन के पीछे लगे रहते हैं और वास्तविक आशय को नहीं पकड़ते, उनका लक्ष्य निमित्त पर ही बना रहता है। निमित्त के कथन का अर्थ शब्दानुसार नहीं होता, किन्तु उपादान के भाव को ही मुख्य समझ कर उस का यथार्थ अर्थ समझना चाहिये।

शास्त्रों में कर्मों का जो वर्णन है वह भी निमित्त मात्र दीखाने के लिये व्यवहार से है अर्थात् आत्मा के अनेक प्रकार के भावों को पहचानने के लिये कर्मों के निमित्त से कथन किया है। वहां आत्मा के भावों को पहचानने का ही प्रयोजन है किन्तु उसकी जगह अज्ञानी का लक्ष्य कर्मों पर ही रहता है। निमित्त की मुख्यता से कथन होता है निमित्त की मुख्यता से कार्य कभी नही होता जैसा काम किया उस प्रकार में निमित्त पर वस्तु का ज्ञान कराने के लिये उसे निमित्त कहा है, पश्चात् छठे दोहे में पं. बनारसीदासजीने भार देकर कहा है कि अरे! असहाय वस्तु स्वभाव में निमित्त है कौन?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैसे एक आदमी अनेक देशों में घूमता है और अनेक प्रकार के वेष धारण करता है किंतु अनेक प्रकार के वेष धारण करने से कहीं वह आदमी बदल नहीं जाता आदमी तो वह का वही रहता है, इसी प्रकार आत्मा को पहचानने के लिये अनेक प्रकार के निमित्त से कथन किया गया है किंतु आत्मा तो एक ही प्रकार का है। मात्र 'आत्मा आत्मा' कहने से आत्मा को नहीं पहचाना जाता, इसलिये उपदेश में भेद से और निमित्त से उसका ज्ञान कराया जाता है। उसका प्रयोजन मात्र आत्मा के भाव को बताना है इसलिये निमित्त का और निमित्त की अपेक्षा से होनेवाले भेदों का लक्ष्य छोड़कर मात्र अभेद उपादान को लक्ष्य में लेना ही सम्यग्दर्शन और मोक्ष का उपाय है। इसलिये उपादान निमित्त के स्वाधीन स्वरूप को पहचान कर उपादान स्वभाव की ओर ढ़लना चाहिये।

'उपादान विधि निर्वचन है निमित्त उपदेश' में यह बात है कि:—प्रत्येक द्रव्य उत्पाद-व्यय ध्रौव्य युक्तसत् होनेसे, उपादान को कार्य करने की विधि स्वतः योग्यता-एक ही प्रकार (निर्वचन) है प्रत्येक द्रव्य में प्रत्येक समयकी स्वतंत्र योग्यता से ही-अपनी योग्यतानुसार कार्य होता है, उसीमें किसी भी भेद-विवाद नहीं है और वहां कौन निमित्त है ऐसा ज्ञान कराने के लिये अनेक प्रकार निमित्त उपचारसे उपदेश है परन्तु किसी भी समय निमित्तकी मुख्यतासे कार्य नहीं होता यह सर्वत्र नियम है और उसे सम्यक्ज्ञानी ही जान सकते है।

B-1502

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

— हमारे हिन्दी प्रकाशन —

मूलमें भूल	... ...	०-१२-०
मुक्तिका मार्ग	... ...	०-१०-०
समयसार प्रवचन भाग १	...	६—०-०
,, ,, भाग २		५—४-०
समयसार प्रवचन भाग ३		४—८-०
प्रवचनसार	... ...	५—०-०
अष्टपाहुड	... ...	३...०-०
चिद्विलास	...	१—२-०
मोक्षमार्गप्रकाशक की किरणें	...	१—०-०
दसलक्षणधर्म	... ...	०-१२-०
जैन बालपोथी	...	०—४-०
सम्यग्दर्शन	... ...	२—०-०
समयसार मूल सं० टीका सहित		१०-०-०
द्वादशानुप्रेक्षा (स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षा)		२—०-०
भेदविज्ञानसार	... ...	२—०-०
निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	...	०—२-६
आत्मधर्म मासिक लवाजम	...	३—०-०
आत्मधर्म फाइल वर्ष १-२-३-५-६-७-८		
सेट रु. १७॥, छुटक फाइल		३-१२-०
लघु जैनसिद्धान्त प्रवेशिका	...	०—४-६
आत्मधर्म अंक नं-५० से ६० तककी बंधि हुइ		
पक्की जिल्दका		२—०-०

। सब ग्रंथोका पोस्टेजादि अलग समझना ।

श्री जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट—सोनगढ (सौराष्ट्र)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मधर्म

भगवानश्री कुंदकुंदाचार्य के ग्रन्थो पर पूज्यश्री कानजी स्वामीके प्रवचनों एवं उनके आध्यात्मिक व्याख्यानोंका लाभ लेना हो तो आज ही "आत्मधर्म" नामक मासिक पत्रके ग्राहक बन जाईयें।

जैन समाजका यह एकमात्र आध्यात्मिक पत्र है। इसके प्रत्येक लेखको पढ़कर आप आत्म विभोर हो जायेंगे। सांसारिक झंझटोंसे उकताए हुओंको इस पत्रकी स्वाध्याय करनेसे परम शान्ति मिलती है।

वार्षिक मूल्य ३) मात्र – नमूना मुफ्त

: प्राप्तिस्थान :

श्री जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़–(सौराष्ट्र)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi